बाबा कीनाराम और अघोर परम्परा

रूप-रेखा 1. पृष्ठभूमि. – 1.1. अघोर, अवधूत. – 1.2. बाबा कीनाराम का साहित्य. – 1.3. बाबा कीनाराम का संदेश और उनकी देन. – 2. 'संत-चरित', और बाबा कीनाराम की जीवन गाथा. – 2.1. बाबा कीनाराम का जीवन चरित. – 2.2. कुछ तिथियों के बारे में. – 3. साहित्यिक समीक्षा. – 3.1. विवेकसार. – 3.2. गीतावली. – 3.3. एक कविता स्थल में लगे एक चित्र से. – 3.4. बाबा कीनाराम और पूर्ववर्ती परम्पराओं का साहित्य. – 3.5. पदों की भाषा. – 4. विवेकसार की महत्ता.

1 पृष्ठभूमि

यह कथा प्रचलित है कि 18वीं शताब्दी में उत्तर भारत के एक चैतन्य संत जिनका नाम बाबा कालूराम था, बनारस के क्रिं-कुण्ड स्थल में रहा करते थे। उनकी दिनचर्या थी कि पतित-पावनी गंगा के हरिश्चंद्र घाट पर वहाँ पड़ी खोपड़ियों को चने खिलाया करते थे। गंगा की रेत में आज भी खोपड़ियाँ मिल जाती हैं क्योंकि बहुधा वे घाटों पर पूरी तरह से जल नहीं पाती हैं, जल में विसर्जित कर दी जाती हैं, और फिर कुछ रेत में दबी पाई जाती हैं। कई बार जब किसी दुर्घटना में किसी व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है तो उसका दाह-संस्कार करने के बदले लोग उसे जल-समाधि दे देते हैं। उस दशा में भी खोपड़ियाँ अक्सर गंगा की रेत में दबी मिल जाती हैं। बाबा कालूराम की विधि बहुत सरल थी। वे श्मशान में पड़ी खोपड़ियों को अपने पास बुलाते थे, और जब वे पास आ जाती थीं तब चबाने के लिये उन्हें चने देते थे। लेकिन एक दिन उनकी इस क्रिया में विघ्न पड़ गया। हर बार की तरह जब उन्होंने खोपड़ियों को अपने पास बुलाया तो वे नहीं आईं। बाबा कालूराम एक सिद्ध महात्मा थे। उन्होंने शीघ्र ही पता लगा लिया कि बाबा कीनाराम नाम के एक और संत वहाँ आए हुए थे, और उन्होंने तंत्र की जानी-मानी स्तम्भन क्रिया कर के खोपड़ियों को बाबा कालूराम तक जाने से रोक दिया था। बाबा कीनाराम चलकर बाबा कालूराम तक पहुँचे और उनसे इस प्रकार का खिलवाड़ करने के बदले अपने स्थान पर जाने का आग्रह किया। दोनों ही संतों ने अनुमान लगा लिया था कि वे दोनों ही अलौकिक सिद्धियों की विभूतियाँ थे। बाबा कालूराम ने बाबा कीनाराम की परीक्षा लेने के उद्देश्य से कहा कि उन्हें भूख लगी है। इसपर बाबा कीनाराम ने गंगा की तरफ़ मुँह कर के कहा, "माँ, एक मछली दे।" तुरत ही एक बड़ी मछली उछलकर नदी के बाहर तट पर आ गिरी। उन दोनों ने उसे एक चिता पर भूना और खा कर तृप्त हुए। कुछ देर पश्चात बाबा कालूराम ने एक मुर्दे को नदी में बहते हुए जाते देखा और बाबा कीनाराम को

Maestri, testi e fonti d'Oriente 5
DOI 10.30687/978-88-6969-892-7/001

यह बात कही। बाबा कीनाराम ने नदी की ओर देखा और कहा कि वह मुर्दा नहीं, ज़िंदा है। बाबा कालूराम ने कहा कि अगर ज़िंदा है तो बुला ले। इसपर बाबा कीनाराम ने मुर्दे को आवाज़ लगाई और वह बहते हुए किनारे आ लगा। बाबा कीनाराम उस तक गए, उसे खड़े होने के लिये कहा, और वह मुर्दा एक जीते-जागते युवक के रूप में खड़ा हो गया। बाबा कीनाराम ने उसे घर वापस जाने के लिये कहा। जब वह घर पहुँचा तो उसे जीवित देख कर सब का मुँह खुला का खुला रह गया। उसकी माँ उसे लेकर बाबा के पास आई और उसे उन्हें ही समर्पित कर दिया। उसकी श्रद्धा ने सोचा कि जो जीवन उसने अपने पुत्र को दिया था उसका तो अंत हो चुका था। उसको बाबा कीनाराम ने पुनर्जीवित कर दिया, इसलिये उत्तम यही रहेगा कि वह अपना नया जीवन उनकी ही सेवा में बिताये। बाबा कीनाराम ने उसे स्वीकार कर लिया और उसका नाम रखा 'रामजियावनराम'। यह सब देखकर बाबा कालूराम ने अपना वास्तविक रूप गुरु दत्तात्रेय के रूप में प्रकट किया, बाबा कीनाराम को पवित्र क्रिं-कुंड स्थल पर लाये, और वहाँ उन्हें अघोर दीक्षा दी।[1] उस समय से बाबा कीनाराम क्रिं-कुंड स्थल पर रहने लगे। यह घटना विक्रम संवत 1754 (सन् 1697) में घटी बताते हैं (शास्त्री 1959, 139; चतुर्वेदी 1973, 102-3)।

बाबा कीनाराम काशी के गुरुतम संतों में गिने जाते हैं। उनके द्वारा काशी के रवींद्रपुरी इलाके में स्थापित क्रिं-कुंड स्थल आज भी बेहद लोकप्रिय, सक्रिय और समाज-सेवा में तत्पर आध्यात्मिक स्थल है। उनके जीवन और साहित्य से पता चलता है कि उन्होंने 17वीं शताब्दी में न केवल अघोर परम्परा को नई स्फूर्ति प्रदान की, बल्कि वैष्णवों की सगुण रामभक्ति परम्परा और निर्गुण शैव-शाक्त अघोर परम्परा में सुंदर सामंजस्य स्थापित किया।[2] उनको श्रद्धा की दृष्टि से केवल एक पूर्णतया सिद्ध संत के रूप में ही नहीं बल्कि एक ऐसे समाज सुधारक और साहित्यिक प्रतिभा वाले व्यक्तित्व के रूप में देखा जाता है जिन्होंने पूर्ण नि:स्वार्थ भाव से अपने को समाज सेवा में लगा दिया था। कुछ इन्हीं कारणों से बाबा कीनाराम ने अपने जीवनकाल में विभिन्न स्थानों पर आठ मठों की स्थापना की, चार जो अघोर प्रवृत्ति की हैं, और चार जिन्हें वैष्णव प्रकृति का माना जाता है। उनकी जीवन कथा यही दर्शाती है कि उन्होंने बार-बार दूर-दूर तक की यात्राएँ कीं – पूर्व में बंगाल से लेकर पश्चिम में बलूचिस्तान तक – और मध्य में हिमालय में भी। सम्भवत: इन यात्राओं के कारण ही उनके साहित्य में भाँति-भाँति के शब्द मिलते हैं जिनमें सूफ़ी परिकल्पना के उर्दू शब्द भी शामिल हैं। बिहार, उत्तर प्रदेश, गुजरात और महाराष्ट्र में उनके विषय में अनेक लोक-कथाएँ प्रचलित हैं, अनेक अवसरों पर लोक-गायक उनकी कविताओं को संगीतबद्ध कर गाते हैं, संतमत में उनको आध्यात्मिक पराकाष्ठा पर पहुँचे हुए संत के रूप में देखा जाता है, और जीवन के हर क्षेत्र से लोग आज भी उनके स्थल में दैहिक, दैविक और सामाजिक तापों से राहत पाने के लिये आते हैं। उनके समन्वयात्मक व्यक्तित्व में एक संत, एक योगी, एक समाज सुधारक और कवि, सभी की छवि मिलती है। इस पुस्तक में हम उनके व्यक्तित्व एवं सामाजिक और आध्यात्मिक योगदान की चर्चा करेंगे, और उनके साहित्य की भी, उनके अपने समय-काल के अनुसार, समीक्षा करेंगे। इस पुस्तक के दूसरे भाग में हम योग और आत्मज्ञान पर आधारित उनकी सबसे अधिक ज्ञात कृति विवेकसार का अनुवाद और उसकी व्याख्या प्रस्तुत करेंगे।

1.1 अघोर, अवधूत

यहाँ अघोर और अवधूत, इन दो शब्दों की चर्चा करना सार्थक रहेगा। अघोर को परिभाषित करना सहज नहीं। प्राय: यह भी चर्चा का विषय बन जाता है कि अघोर एक सम्प्रदाय है, अथवा एक पथ या पद। यहाँ तक कि इस परम्परा के साधकों के लिये प्रयुक्त शब्द – औघड़ या अघोरी - भी कुछ अस्पष्टता लिये रहते हैं।[3] ऐतिहासिक दृष्टिकोण से देखें तो औघड़ों की साधनापरक क्रियाएँ, जैसे श्मशान में रहना, कपाल धारण करना, कपाल-पात्र में भोजन करना इत्यादि पूर्वकालिक कापालिक-क्रियाओं से भिन्न नहीं जैसा कि लोरेंज़ेन (1972) जैसे विद्वानों के सर्वेक्षण से ज्ञात होता है। गोम्ब्रिच द्वारा बौद्धकाल में महाकाल जैसे श्मशानवासी शैव साधक

1 इस दीक्षा की एक सम्भावित तिथि सन् 1757 (वि.सं. 1814) लिखी गई है (चतुर्वेदी 1972, 692)। किंतु यह तिथि संदिग्ध प्रतीत होती है क्योंकि बाबा कीनाराम ने अवधूत मत पर रचित अपने विवेकसार में उसकी रचना तिथि सन् 1755 (वि.सं. 1812) दी है (श्री पोथी विवेकसार, 33)।

2 सगुण और निर्गुण हिंदू आध्यात्मिक शब्दावली की अभिव्यक्तियाँ हैं। इन शब्दों का प्रयोग उस परम-सता के चरित्र-वर्णन के लिये भी हो सकता है, और उन चरित्रों के आधार पर विकसित परम्पराओं के लिये भी। सगुण का अर्थ होता है कि वह परम-सत्ता चरित्र, अर्थात् रूप-रंग आदि रखती है, हालाँकि ये चरित्र सत्त्व, रजस और तमस गुणों से उत्पन्न होते हैं। निर्गुण का अर्थ होता है उस परम-सत्ता का वह रूप जिसका न आकार है, न रंग है, और इसलिये वह कल्पना से भी परे है।

3 अपने शोध-पत्र में गुप्ता लिखती हैं कि 'औघड़' शब्द, 'अघोरी' शब्द की तुलना में कम आपत्तिजनक माना जाता है (1993, 2)। ब्रिग्स ने भी औघड़ और अघोरी के लिये कुछ ऐसा ही अनुमान लगाया था (1938, 71, 224)। अन्य विद्वान मानते हैं कि यह केवल प्रांत या क्षेत्र की भाषा विशेषता का परिणाम है जहाँ "पंजाब में इन्हें 'सरभंग', मद्रास में 'ब्रह्मनिष्ठ', बंगाल में 'अघोरी' तथा उत्तरप्रदेश और बिहार में 'औघड़'" कहा जाता है (चतुर्वेदी 1972, 687)।

के बौद्ध-धर्म में परिवर्तन के उद्धरण (2002, 158-60) से यह भी ज्ञात होता है कि यह साधना प्राचीन है। अघोर शब्द को ऋग्वेद की 10.85.44 ऋचा में पाया जा सकता है जहाँ रुद्र के रौद्र रुप का वर्णन है जो सभी औषधियों के अधिष्ठाता और करुणामय देव कहे गए हैं।[4] यजुर्वेद की तैत्तिरीय और वाजसनेयी संहिताओं में रुद्र के कल्याणकारी स्वरूप का वर्णन है जिन्हें अपनी शक्ति शिवा से अविच्छिन्न रुप से सम्बद्ध बताया गया है।[5] तोज़्सोंक (2012) के अनुसार तंत्र से भी पहले की शैव मान्यताओं में 'अघोर' नाम महत्त्व रखता है क्योंकि वैदिक अघोर मंत्र पाशुपत सूत्रों के पाँच मंत्रों में से एक है। बाद में शैव सिद्धांत ने इन पाँच मंत्रों को अपनाकर अघोर मंत्र को शिव के दक्षिण मुख से जोड़ दिया। पुन:, वैदिक अघोर मंत्र की 'अघोर', 'घोर' एवं 'घोरघोरतर' परिकल्पनाएँ शाक्त तंत्रों में देवी की परिकल्पना में समाहित हुईं। आठवीं शताब्दी के महाकवि भवभूति के साहित्य में अघोरघण्ट जैसे नाम तो मिलते हैं, लेकिन उनको अघोर सम्प्रदाय का न कहकर सोमसिद्धांती या कापालिक की ही संज्ञा दी जाती है।[6] किंतु सिद्धांत होने के कारण इसे कम से कम एक पथ तो माना ही जा सकता है। बाबा कीनाराम की परम्परा द्वारा प्रकाशित साहित्य में इसे एक पद भी कहा जाता है, जिसे साधक पूर्ण सिद्धि के बाद प्राप्त करता है। विहंगम दृष्टि से देखें तो यह अद्वैत सिद्धांत पर आधारित एक प्राचीन आध्यात्मिक परम्परा है जिसकी सामाजिक अभिव्यक्ति भेद-भाव रहित व्यवहार में होती है। अघोर शब्द का प्रचलित अर्थ है 'जो घोर या भयानक न हो', अर्थात् सौम्य और प्रियदर्शन हो, परंतु कभी-कभी इसका प्रयोग 'अत्यंत घोर' के अर्थ में भी किया जाता है। इस स्थिति में यह एक विपरीत अवस्था को दर्शाता है (चतुर्वेदी 1972, 686)। वर्तमान काल में इसे आत्मज्ञान पाने का एक ऐसा मार्ग माना जाता है जिसमें योग, तंत्र, भक्ति और सेवा, चारों समाहित हैं। इस परम्परा में हुए समसामयिक परिवर्तनों द्वारा कुष्ट रोगियों या समाज के अन्य पद-दलित लोगों की सेवा उसी प्रकार सार्थक है जैसे कि पहले के समय में साधकों द्वारा श्मशानों, नदी किनारों, सुनसान स्थानों, जंगलों या पर्वत कंदराओं में साधनाकाल व्यतीत करना हुआ करता था (बैरेट 2008, xiii)। अघोर परम्परा के अनुयायियों का ऐसा व्यवहार उनके इस विश्वास पर आधारित है कि इस सृष्टि के हर अणु-परमाणु तक में उस परब्रह्म की सत्ता व्याप्त है, इसलिये जो कुछ भी इस जगत में दीख पड़ता है, सब पवित्र है, सब उसी दैवीय प्रेरणा से संचालित है। खाद्य पदार्थों में पवित्र-अपवित्र का भाव, या सामाजिक व्यवहार में ऊँच-नीच की अवधारणा मानव-मन का उत्पाद है, कोई दैवीय रचना नहीं।

यह एक मान्य अवधारणा है कि ऐसे कई सम्प्रदाय हैं जिनसे अघोर क्रियाओं का सम्बंध माना जाता है। इनमें पाशुपत, कापालिक, बौद्ध, सिद्ध, नाथ, वैष्णव, और निकट इतिहास में संतमत के अनुयायी गिने जाते हैं। ऐतिहासिक दृष्टिकोण से इन सम्प्रदायों में विचारों, क्रियाओं, सिद्धांतों और यहाँ तक कि सिद्ध-पुरुषों तक का आदान-प्रदान चलता रहा है। उदाहरण के लिये कापालिक शैव भी हो सकते हैं और बौद्ध भी, हालाँकि विद्वानों का मानना है कि 14वीं शताब्दी के आसपास वे लोग अघोर या नाथ परम्पराओं में अंतर्भुक्त हो गये (लोरेंज़ेन 1972, 53; व्हाइट 1996, 99-100)। कुछ ग्रंथों में कथा है कि नवनाथ, जिन्होंने नाथ परम्परा को जन्म दिया, पहले बौद्ध सिद्धाचार्य थे जिन्होंने अपने मठ की छत के ढह जाने के बाद मत-परिवर्तन कर लिया। महाराष्ट्र की परम्परा में इन नवनाथों का साम्य दत्तात्रेय द्वारा प्रवर्तित अवधूत सम्प्रदाय के नव-नारायणों से किया जाता है (व्हाइट 1996, 74, 106, 396 पाद टिप्पणी 64)।

बाबा कीनाराम की परम्परा के साहित्य में भी दो समानांतर अघोर-धाराओं का उल्लेख है –

> औघड़ों के दो घराने प्रसिद्ध हैं – हिमाली और गिरनाली। भगवान शंकर का निवास-स्थान होने से हिमालय को अघोर-मत का उद्गम माना गया है। एक विद्वान ने लिखा है कि औघड़ों में यह सामान्य धारणा है कि उनके मत के प्रवर्तक गोरखनाथ थे। यह हिमाली घराना है।... गोरक्ष देश नेपाल में श्री गोरखनाथ का प्रभाव अत्यधिक था। कालांतर में इस मत वाले ही अघोर-उपासना करते हुए मैदानों में आये। ये हिमालय प्रदेश से आ रहे थे इसी लिए हिमाली कहलाए।
>
> अवधूत मत के दूसरे मान्य आचार्य दत्तात्रेय, मुनि अत्रि एवं अनुसूया के पुत्र रुप में अवतरित हुए हैं। इनको भगवान विष्णु का अवतार माना गया है। विंध्यगिरि के दक्षिण भाग में इनका क्षेत्र है।... अवधूत संत गिरनार पर्वत को परम पवित्र मानते हैं। गिरनार शिखर पर श्री दत्त की पादुका तथा कमण्डलु तीर्थ हैं।... अत: गिरनार के श्रीदत्त स्थान की परम्परा के औघड़ गिरनारी कहलाते हैं (चतुर्वेदी 1973, 76-7)।

विद्वानों द्वारा लिखित साहित्य में इस प्रकार के हिमाली और गिरनाली घरानों का उल्लेख नहीं मिलता, इसे हम एक साम्प्रदायिक व्याख्या मान सकते हैं, लेकिन बनारस में यह बात न केवल प्रत्यक्ष समझी जाती है,

---

4 अघोरचक्षुरपतिघ्येधि शिवा पशुभ्य: सुमना: सुवर्चा:। (तू प्रियदर्शन, पति को पीड़ा न देने वाली, अन्य जनों के लिये भी कल्याणकारी शोभन मन और तेजवाली हो (देखें - Rigveda/10/85/44 (vedicscripture.com))।

5 या ते रुद्र शिवा तनूरघोरा पापकाशिनी... (तैत्तिरीय संहिता 4.5.1.1)। (हे रुद्र! आपका जो मंगलदायक, सौम्य, पुण्यप्रकाशक स्वरुप है...)।

6 देखें लगभग आठवीं शताब्दी में महाकवि भवभूतिकृत मालतीमाधवम् (शर्मा 1971)।

अपितु कुछ महत्व भी रखती है। सन् 2021 में जब उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री योगी आदित्यनाथ रामगढ़ स्थित बाबा कीनाराम मठ में पीठाधीश्वर बाबा गौतम राम से मिलने आए, तो प्रेस में इस घटना को 'दो पीठाधीश्वरों का मिलन' कह कर प्रकाशित किया गया। इस बात को रेखांकित किया गया कि ये दो अलग परम्पराएँ हैं, और योगी आदित्यनाथ 'नाथ' परम्परा के हैं जब कि बाबा गौतम राम 'अघोर' परम्परा के।[7]

दो अन्य प्रकार की समानांतर धाराओं का विवरण 'अघोर' और 'कनफटा' के अंतर पर आधारित है (ब्रिग्स 1938, 30-1; चतुर्वेदी 1972, 688; व्हाइट 1996, 99-100)। ऐसा प्रतीत होता है कि 'नाथ' संज्ञा में बहुत तरह के धर्मावलम्बियों का समावेश हो गया। इस शीर्षक के अंतर्गत आ जाने के बाद भी ऐसा नहीं था कि उन समुदायों ने अपनी पहले की क्रियाओं का त्याग कर दिया। कुछ, जैसे कि औघड़, अपने को नाथ कहते भी नहीं थे जब तक कि उनकी दीक्षा ही उस सम्प्रदाय में न हुई हो। इस प्रकार, गुरु-शिष्य परम्परा के कारण नाथ सम्प्रदाय में, और नाथ सम्प्रदाय के समानांतर, कई प्रकार की परम्पराएँ और क्रियाएँ चलती रहीं। उदाहरण के लिये, मत्स्येंद्रनाथ के गुरुभाई जालंधरनाथ एक औघड़ थे, जबकि मत्स्येंद्रनाथ एक कनफटा योगी थे (ब्रिग्स 1938, 67; द्विवेदी 1981, 7, 75)। माना जाता है कि मत्स्येंद्रनाथ ने नाथ सम्प्रदाय में हठयोग की व्यवस्था दी, लेकिन यह हठयोग स्वयं योगिनी-कौल और सिद्ध-कौल परम्पराओं का समामेलन था। हठयोग के छत्र के नीचे भी हमें कम से कम दो परम्पराएँ मिलती हैं। एक षडांग योग, यानी छ: अंगों से युक्त योग की परम्परा जिसका प्रतिपादन गोरखनाथ ने किया।[8] दूसरी, जिसका प्रतिपादन ऋषि मार्कण्डेय के पुत्र दत्तात्रेय से माना जाता है और जिसे अष्टांग योग, अर्थात आठ अंगों से युक्त, योग की परम्परा कहा जाता है। योग की इन धाराओं में कुछ अपने को 'अवधूत' मत का मानती हैं, और इसी मत का सिद्धांत बाबा कीनाराम ने अपने विवेकसार में किया है।

ऊपर हमने देखा कि हिमाली और गिरनाली घरानों का वर्णन करते हुए अघोर और अवधूत शब्दों का पर्यायवाची की तरह प्रयोग किया है। ऐसा इसलिये है कि संत तो इन्हें पर्यायवाची मानते ही हैं, कुछ विद्वानों का भी यही मत है (देखें चतुर्वेदी 1972, 695; गुप्ता 1993)।

अवधूत परम्परा का स्रोत दत्तात्रेय से माना जाता है और अवधूत शब्द की प्रतिध्वनि उपनिषदों में, बौद्ध सिद्धों की 'धूतांग' क्रियाओं में, तथा नाथ परम्परा में भी सुनाई पड़ती है। उदाहरण के लिये, तुरीयातीतोपनिषद् में ब्रह्मा विष्णु से अवधूत पथ का रहस्य पूछते हैं और विष्णु उन्हें यह बताते हैं कि इस पथ पर चलने वाला व्यक्ति इस रचे हुए जगत की अवधारणा से ऊपर उठ कर एक अद्वैत-भाव से परिपूर्ण जीवन जीता है (आचार्य 1971, 541-3)।[9] सामवेद के एक अंश, दर्शनोपनिषद् में, सांकृति महान योगी दत्तात्रेय से योग मार्ग के बारे में पूछते हैं।[10] दत्तात्रेय उन्हें विस्तारपूर्वक समझाते हैं और अपने उपदेश का समापन अद्वैत-भाव के जीवन से करते हैं (अय्यंगार 1938, 148)। कीनाराम बाबा स्पष्ट कहते हैं कि उन्होंने अवधूत मार्ग का ज्ञान दत्तात्रेय से पाया है, किंतु दत्तात्रेय द्वारा प्रणीत अवधूत सम्प्रदाय वैष्णव कहा गया है (व्हाइट 1996, 99)। आम धारणा में, शायद पौराणिक कथाओं के आधार पर, दत्तात्रेय को ब्रह्मा, विष्णु और शिव के अंशों से युक्त भगवान की एक प्रतिमूर्ति माना जाता है, किंतु उनका इतिहास और बहुत प्राचीन है। विद्वत्जन दो दत्तात्रेयों की पुष्टि करते हैं, एक, जो पौराणिक मिथकों के स्रोत हैं, और दूसरे, जो एक ऐतिहासिक पुरुष रहे हैं जिन्होंने 12वीं-13वीं शताब्दी के आसपास कई ग्रंथ लिखे (व्हाइट 1996, 141; रिगोपुलोस 1998, 45)। दत्तात्रेय का वर्णन एक अघोरी के रूप में भी हुआ है (ब्रिग्स 1938, 75)। बल्कि, जैसा कि रिगोपुलोस बताते हैं, वे सबसे पहले हुए अघोरी हो सकते हैं

> एक लोक-परम्परा के अनुसार दत्तात्रेय सभी नाथों के आदि गुरु हैं, और शिव प्रथम नाथ हैं। इस प्रकार शिव स्वयं दत्तात्रेय के शिष्य बन जाते हैं! दत्त को पहला अघोरी भी कहा गया है... (1998, 105 पाद टिप्पणी 35)[11]

औघड़ और अवधूत की वेश-भूषा (दिगम्बर या पैबंद वाले झूल को पहने हुए) और सिद्धांत (द्वैतभाव और विधि-निषेध से परे) के वर्णन से यह साफ़ हो जाता है कि दोनों वस्तुत: एक ही हैं। यह अवश्य है कि अवधूत

---

7 देखें "Aghor, Nath Sampraday Come Together..." (Aghor, Nath Sampraday Come Together, But Why? | Yogi Adityanath Meets Baba Siddharth Gautam Ram Ji: `https://www.youtube.com/watch?v=xTRTjhSxpX8`.)।

8 गोरखनाथ को कई ग्रंथों का रचयिता माना जाता है। इनमें से कुछ ग्रंथों, जैसे सिद्धसिद्धांतपद्धति (1981, 68) में उनके द्वारा अष्टांग योग का प्रतिपादन है। लेकिन कुछ अन्य ग्रंथों में जैसे गोरक्षशतक में, षडांग योग का वर्णन है।

9 ऑलिवेल का अनुमान है कि तुरीयातीतोपनिषद् चौदहवीं या पंद्रहवीं शताब्दी में रचा गया (1992, 9)।

10 दर्शनोपनिषद् को योग उपनिषदों के समूह के अंश के रूप में फ़्लड 100 ई.पू. से 300 ई.प. रचा गया मानते हैं (2000, 96)।

11 यदि अन्यथा निर्दिष्ट न हो, सभी अनुवाद लेखक द्वारा किये गए हैं।

भी एक से अधिक प्रकार के हो सकते हैं जैसे ब्रह्मावधूत, शैवावधूत, वीरावधूत और कुलावधूत, जिनमें से वीरावधूतों का वर्णन – बढ़ी हुई जटा सरीखे बाल, रुद्राक्ष धारण किये हुए, हड्डियों की माला पहने हुए, दिगम्बर घूमते हुए, कौपीन (लंगोटी) या गेरुए वस्त्र पहने हुए, शरीर पर भस्म या रक्त-चंदन का लेप किये हुए, हाथ में दंड लिये हुए, मृगचर्म, फरसा, खट्वांग, डमरू, मजीरा से सुसज्जित, गाँजा और मद्य-पान करते हुए – परम्परा के अनुसार, औघड़ों पर पूरी तरह लागू होता है (चतुर्वेदी 1973, 76)।

दत्तात्रेय की कथाएँ इस तरह से जनमानस में व्याप्त हैं कि योग और तंत्र की विभिन्न धाराओं पर उनका प्रभाव नकारा नहीं जा सकता, चाहे वह पौराणिक कथाओं के माध्यम से हो, चाहे उनके द्वारा लिखित साहित्य के द्वारा। बाबा कीनाराम द्वारा प्रणीत परम्परा के संदर्भ में हमारे लिये दत्तात्रेय का समन्वयवादी चरित्र बहुत महत्व रखता है। ऋषि अत्रि और उनकी पत्नी अनुसूया के पुत्र के रूप में जन्मे दत्तात्रेय को बाद में मार्कण्डेय पुराण में तांत्रिक चरित्र वाले योगी विष्णु की छवि में देखा गया, और फिर उनका ब्रह्मा, विष्णु और शिव की त्रिमूर्ति से साम्य माना गया (रिगोपुलोस 1998, 27, 29, 249)। दत्तात्रेय के एक ही समय में शैव, शाक्त या वैष्णव तीनों हो सकने के कारण ही हमें नाथ परम्परा के हठयोग में भी तंत्र का आभास हो जाता है और इसी कारण से संतमत की भाव-धारा द्वारा कीनारामी औघड़ों की चर्या में वैष्णव चरित्र भी झलकता है (शंकर 2011, 154)।

1.2 बाबा कीनाराम का साहित्य

गोरखनाथ, कबीर और तुलसीदास की तुलना में बाबा कीनाराम को बहुत अधिक लोग इसलिये भी नहीं जानते क्योंकि उनकी सभी साहित्यिक कृतियाँ अभी तक खोजी नहीं जा सकी हैं। इसके बावजूद यदि कोई खोजना चाहे तो कुछ साहित्यिक रत्नों को अवश्य पा सकता है। सत्रहवीं शताब्दी के बाद से संतमत की परम्परा द्वारा रचित साहित्य ऐसा ही एक समृद्ध कोष है जिसका पूरा संज्ञान लेना अभी तक बाकी है। सन 1959 में जब आचार्य धर्मेंद्र ब्रह्मचारी शास्त्री ने सरभंग सम्प्रदाय के संतों पर अपना शोध प्रकाशित किया तो हिंदी जगत का ऐसे अज्ञात-अनदेखे संतों की साहित्य-दुनिया से एक सुखद परिचय हुआ। यह कहा जा सकता है कि सरभंग सम्प्रदाय के कई संत-कवि छंद-शास्त्र के उतने बड़े ज्ञाता नहीं थे जितने कि तुलसीदास जैसे जगमगाते सितारे, लेकिन जो कुछ उन संत-कवियों ने लिखा, और उसका जो प्रभाव उनके क्षेत्र के ग्रामीण और शहरी जनमानस पर पड़ा, वह साधारण नहीं है। उन सभी में बाबा कीनाराम का नाम एक ज्वलंत उदाहरण है।

भारत में विद्वत्जन अघोर परम्परा को दत्तात्रेय और गोरखनाथ की परम्परा के बीच की कड़ी मानते हैं (चतुर्वेदी 1972, 690)। अघोर और नाथ परम्पराओं का आपस में ऐसे घुले-मिले होने से उनके विचार और व्यवहार में भी काफी समानता होना स्वाभाविक है। यह भी सत्य है कि संत-सम्प्रदाय की साझा शब्दावली बहुत हद तक गोरखनाथ से नि:सृत है, लेकिन उसका वज्रयानी बौद्धों के गीतों से भी सम्बंध देखा जा सकता है। उनकी शब्दावली जो सूक्ष्म शरीर, सृष्टि रचना-क्रम, इस रचना में नारी और पुरुष तत्त्वों का समायोग, पिण्ड में ब्रह्माण्ड की परिकल्पना, काया के सम्पूर्ण परिचय की आवश्यकता, आध्यात्मिक पथ पर गुरु की अनिवार्यता आदि से सम्बंधित है, संतमत के सभी संतों द्वारा मान्य है। बाबा कीनाराम के काव्य में भी यह साझा शब्दावली परिलक्षित है, जिसके कारण कुछ विद्वान उनके सिद्धांत को संतमत के संतों से बहुत अधिक भिन्न न मानकर उसी की एक विशिष्ट अभिव्यक्ति मानते हैं (चतुर्वेदी 1972, 687)।

एक संत और एक कवि, दोनों रूपों में बाबा कीनाराम एक रोचक व्यक्तित्व दर्शाते हैं। हालाँकि वे कवि से अधिक संत हैं, लेकिन उनके साहित्य से ही हम उनके धार्मिक-दार्शनिक अनुभावों का परिचय पाते हैं। जैसा कि उनके जीवन-चरित की कथाओं में दर्शाया गया है, हम उन्हें एक कर्मयोद्धा संत भी कह सकते हैं जिनके जीवन-चरित के अनुसार उन्होंने अहिंसात्मक विरोध प्रदर्शन की अनूठी युक्ति निकाल ली थी, जहाँ वे अपने को गिरफ़्तार करवा कर, फिर जेल में हड़कंप मचाकर, राजनयिकों को वार्ता करने पर बाध्य कर देते थे। वे एक ऐसे संत थे जो औघड़दानी शिव की तरह लोगों को आशीर्वाद दे देते थे, लेकिन यदि वे पाते थे कि लोग अपने कर्तव्य से भटक चुके हैं, तो उतनी ही सरलता से उन्हें शाप भी दे सकते थे। एक कवि के रूप में वे एक ऐसे व्यक्तित्व को प्रकट करते हैं जहाँ किसी संगम की तरह विभिन्न परम्पराओं के दर्शन और मान्यताएँ समान रूप से समाहित हो जाती हैं। उनकी कुछ रचनाओं में सशक्त योग और नाथ परम्परा की सुगंध मिलती है, तो अन्य रचनाओं में उनके सगुण भाव का सौंदर्य निखरता है जहाँ वे मुख्य रूप से श्रीराम के प्रति अपनी भक्ति निवेदित करते हैं, लेकिन साथ ही हनुमान, विष्णु और शिव की भी आराधना करते हैं। कुछ ऐसी रचनाएँ भी हैं जहाँ तंत्र पथ के विधि-निषेध भाव का चित्रण है, तो कुछ अन्य में उर्दू और इस्लाम से उनके परिचय की झलक भी मिलती है। इन सभी आयामों में यदि हम उनके बारे में बहु-चर्चित कथाओं को भी जोड़ दें जहाँ वे चमत्कार भी दिखला देते हैं, तो हमें एक ऐसे व्यक्तित्व का दर्शन होता है जो आमूल-चूल कर्म और वचन दोनों में समन्वयात्मक है, जो किसी भी वर्गीकरण से परे रहता है, लेकिन फिर भी सदा सम्मोहक जिज्ञासा उत्पन्न करता है।

हिंदी के मध्यकालीन साहित्य में किस प्रकार से तंत्र, अघोर, नाथ व भक्ति परम्पराएँ घुलते-मिलते आगे बढ़ीं इसका भी वे एक विमुग्ध कर देनेवाला उदाहरण प्रस्तुत करते हैं।

1.3 बाबा कीनाराम का संदेश और उनकी देन

साहित्यिक कृतियों से इतर, अघोर परम्परा को ही बाबा कीनाराम ने एक नई दिशा में उन्मुख करने की पहल की, उसे नव-स्फूर्ति देने का श्रेय उन्हीं को दिया जाता है। उन्होंने मन, वचन और कर्म से वैष्णव और शैव, योग और तंत्र की धाराओं का समन्वय किया है। उनके ऐतिहासिक जीवन और लेखन ने सरभंग सम्प्रदाय के अनेक संतों, नाथों और योगियों को प्रेरणा दी है, और उनके मठ में सभी धर्मों और वर्गों के लोगों के साथ आडम्बर रहित समता-सामंजस्य देखा जा सकता है। आरोग्य शक्तियों से परिपूर्ण माने जाने वाले पवित्र क्रिं-कुण्ड में अक्सर देखा जा सकता है कि वहाँ डुबकी लगाने वालों में एक बड़ी संख्या मुस्लिम परिवारों की भी होती है। यह कोई आकस्मिक बात नहीं। अघोर दर्शन तो आमूल किसी भी प्रकार के भेद-भाव के विरुद्ध है, चाहे वह जाति-भेद हो, वर्ग-भेद हो, धर्म-भेद हो, या लिंग-भेद ही क्यों न हो। कीनाराम ने सबको इन सभी संकीर्णताओं से परे जाने की ही शिक्षा दी है।

बाबा कीनाराम एक सिद्ध महात्मा थे। उन्हें न किसी के प्रति आकर्षण था न विकर्षण। लेकिन वे कर्मयोगी थे, भक्तवत्सल थे, सामाजिक चेतना के प्रति जागरूक थे। उनके द्वारा चलाई गई परम्परा, जो अब कुछ लोगों के अनुसार कीनारामी औघड़ों की परम्परा कही जाती है, उनके संदेश और साधना पद्धति, दोनों का ही विकास कर रही है। अघोर, जो कभी समाज से सर्वथा पृथक माना जाता था, समाज से भली-भाँति जुड़ चुका है। यह नवीन धारा अब काल क्रम से समन्वित रुप से बह रही है। उनके जीवन पर कुछ ऐतिहासिक प्रकाश डालने का लेखक का यह प्रयास, उनके विवेकसार के अंग्रेज़ी अनुवाद, और उसकी हिंदी और अंग्रेज़ी में व्याख्या के साथ, प्रस्तुत है।

1.4 अघोरेश्वर महाप्रभु भगवान राम

बाबा कीनाराम की सेवा भावना से प्रेरित होकर उनकी ही परम्परा के अघोरेश्वर महाप्रभु भगवान राम जी ने बनारस में कुष्ट सेवा आश्रम की स्थापना की, जहाँ से लाखों मरीजों को चिकित्सा प्रदान की जा चुकी है। बाबा कीनाराम की परम्परा को वर्तमान में समझने के लिये बाबा भगवान राम जी के बारे में दो शब्द कहना आवश्यक है। उनकी साधना के दिनों में उनको लोग औघड़ बाबा कहते थे। जब उनको ज्ञान प्राप्त हो गया और उन्होंने सन् 1961 में श्री सर्वेश्वरी समूह नाम की संस्था की स्थापना करने के बाद पड़ाव, वाराणसी में एक कुष्ट-सेवा अस्पताल खोला, तो उनको अवधूत भगवान राम नाम से जाना जाने लगा। जब उनके द्वारा आरम्भ किये गये कार्यक्रमों में सफलता, और विस्तार, दोनों होने लगे, तो समाचार-पत्र और भक्त, सभी उनको अघोरेश्वर महाप्रभु भगवान राम कहने लगे। फिर भी उनके पुराने भक्त उन्हें केवल सरकार बाबा कह कर ही पुकारते थे। क्रिं-कुण्ड स्थल में 1951 में बाबा राजेश्वर राम ने उन्हें अघोर परम्परा में दीक्षित किया था, जिसके बाद वे एकनिष्ठ होकर बनारस से लेकर बस्तर तक गंगा के कछार और श्मशानों में कठोर तप करने लगे। उन्हें शीघ्र ही बहुत छोटी वय में ही सफलता मिल गई, और उन्होंने अघोर परम्परा को सामाजिक हित में लगाने का निर्णय लिया।

बाबा कीनाराम ने अपने जीवनकाल में जिस समाज सेवा की प्रक्रिया का आरम्भ किया था, वह उनके परवर्ती महंतों की प्रकृति और उत्साह पर निर्भर होकर चलती रही। यह सरकार बाबा ही थे जिन्होंने एक सुव्यवस्थित कार्यक्रम बनाकर उसका कार्यान्वयन किया, और सबसे पहले बनारस शहर और उसके आस-पास के क्षेत्रों में कुष्टियों की सेवा प्रारम्भ की। उसके बाद उन्होंने दहेज प्रथा के उन्मूलन और अंत्येष्टि क्रिया में कल्पनातीत व्यय से लुट जाने वाली प्रक्रियाओं का शमन करने की दिशा में समूह को लगाया। तत्पश्चात निर्धन परिवारों के बच्चों की शिक्षा और समाज में महिला वर्ग की प्रतिष्ठा के उत्थान की दिशा में कार्यारम्भ किया। उनका चुम्बकीय व्यक्तित्व और उनके भक्तों की दृढ़ आस्था के कारण उनकी संस्था एक सच्ची समाज सेवी संस्था, और स्वयं उनको एक सच्चे संत के रुप में जाना जाने लगा। हालाँकि उनके गुरु बाबा राजेश्वर राम चाहते थे कि उनके बाद सरकार बाबा ही क्रिं-कुण्ड स्थल के महंत बनें, किंतु बाबा भगवान राम ने इस विचार का अनुमोदन न कर, क्रिं-कुण्ड स्थल की प्राचीन परम्परा को अक्षुण्ण रखते हुए, औघड़ साधुओं की एक नयी परम्परा श्री सर्वेश्वरी समूह के माध्यम से प्रणीत की। बाबा भगवानराम जी की शिष्य परम्परा के सभी मुख्य संतों ने न केवल स्वयं अपने आश्रम स्थापित किये हैं, बल्कि सेवा की जिस भावना से प्रेरित होकर उन्होंने चिकित्सा, शिक्षा, अल्प-व्यय में विवाह और अंतिम संस्कार इत्यादि का आरम्भ किया था, वह सब भी इन नवीन आश्रमों में दृष्टिगोचर होता है।

अपने गुरु की इस चिंता का समाधान करने के लिये, कि उनके बाद कौन क्रिं-कुण्ड स्थल की गद्दी पर बैठेगा, बाबा भगवानराम जी ने ही 1978 में एक नौ वर्ष के बालक, गौतम राम का, स्थल के अगले पीठाधीश्वर

के रूप में अभिषेक कर दिया। बाबा भगवानराम जी ने अपने गुरु, बाबा राजेश्वरराम जी के जीवन काल में ही, क्रिं-कुण्ड स्थल के जीर्णोद्धार का कार्य आरम्भ किया था। वह कार्य बाबा गौतमराम जी की अध्यक्षता में आश्चर्यजनक ढंग से प्रगति कर गया। सरकार बाबा ने अपना शरीर सन् 1992 में त्याग दिया, और उसके बाद बाबा गौतम राम ने स्थल के विकास और समाज से जुड़ने के कार्यक्रम का श्रीगणेश किया। पुराने क्रिं-कुण्ड स्थल की समाधियों, बाबा कीनाराम के तख़्त, तथा उनके द्वारा स्थापित धूनी अभी भी वहाँ हैं, लेकिन बाकी के क्रिं-कुण्ड की रूप-रेखा पूर्णतया बदल गई है। स्थल का परिसर बहुत खुला-खुला हो गया है, बाबा भगवानराम जी की समाधि के अतिरिक्त रोज़ बढ़ती भक्तों की भीड़ को देखते हुए उनके आवास इत्यादि के लिये भी नए भवनों का निर्माण हुआ है। लेकिन इस प्रकार के निर्माण से भी अधिक महत्व इस बात का है कि स्थल की ओर से चिकित्सा शिविर आयोजित किये जाते हैं, बाबा भगवानराम जी के जन्मस्थान गुण्डी ग्राम में स्कूल बहुत वर्षों पहले ही बना दिये गये थे जो अब सुचारु कार्य कर रहे हैं, वाराणसी शहर में ही एक अन्नक्षेत्र शुरु हो गया है जो नित्य भोजन वितरित करता है। इससे सम्बंधित आश्रमों में भी ज़रूरतमंद लोगों को सर्दी में वस्त्र और कम्बल नियमित रूप से बाँटे जाते हैं, चिकित्सा की जाती है, और हर प्रयास किया जाता है कि समाज के सभी वर्गों के उत्थान में सहयोग किया जाए। बाबा कीनाराम के जन्मस्थान रामगढ़ में उनके द्वारा स्थापित मठ का भी जीर्णोद्धार कर दिया गया है और अब उस पूरे क्षेत्र को ही तीर्थ और पर्यटन क्षेत्र के रूप में विकसित किया जा रहा है। बाबा कीनाराम कभी एक स्थान पर बैठकर रहने वाले तो थे नहीं, उनके 11वें पीठाधीश्वर बाबा गौतमराम भी सदा सक्रिय रहते हैं, भ्रमण में रहते हैं। जिस प्रकार बाबा कीनाराम घूम-घूम कर जनहित के कार्य किया करते थे, वैसे ही क्रिं-कुण्ड स्थल अभी भी कर रहा है, लेकिन और संगठित और व्यापक रूप में। कोविड-19 महामारी के समय में स्थल की ओर से भोजन इत्यादि के वितरण का इतना अच्छा योगदान किया गया कि स्वयं भारत के प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी जी ने स्थल को पत्र लिखकर उनके प्रयासों को सराहा। आज देखने में स्थल सरकार बाबा के गुरु बाबा राजेश्वर राम के समय से बहुत भिन्न लगता है। उसके कार्यक्रम भी बहुत व्यापक हो गए हैं और वह एक अखिल-भारतीय संस्था बनती जा रही है **[चित्र 1]** **[चित्र 2]**।

2 ‘संत-चरित’, और बाबा कीनाराम की जीवन गाथा

किसी संत के जीवन चरित के साथ न्याय कर पाना सहज नहीं। ऐसा इसलिये है क्योंकि आम नर-नारी जिस प्राकृतिक विधा द्वारा इंद्रियों के सीमित ज्ञान से इस संसार को देखते, सुनते और समझते हैं, संत-गण, अपनी पारलौकिक सिद्धियों के कारण, ऐसा माना जाता है, उन सीमाओं से बहुत परे जा चुके होते हैं। अतएव, उन लोगों के लिये जो उनके प्रति श्रद्धा, विश्वास और प्रेम रखते हैं, वे संत अति-मानवीय या दैवीय शक्ति से सम्पन्न होते हैं, और किसी सामान्य मानव की संकीर्ण बुद्धि द्वारा उन संतों के क्रिया-कलापों को समझना असम्भव होता है। यह प्रतिमान संसार के सभी पवित्र संत जनों के लिये मान्य है, इस बात से कोई अंतर नहीं पड़ता कि वे किस देश, स्थान, या धर्म से हैं। ऐसे संत-जनों के जीवन में हम एक प्रकार का विशिष्ट चरित्र देख सकते हैं जो स्पष्ट है, और जो ‘लब्ध-ज्ञान’ माने जाने वाले सभी संतों पर एक समान रूप से लागू होता है। उनके भक्तों के लिये उनका दैवीय गुणों से युक्त ‘सत् चरित्र’ उनके द्वारा पारलौकिक कृत्यों की क्षमता का द्योतक होता है, क्योंकि उनकी काया में ही, या उनके संग, उस अदृश्य ईश्वरीय उपस्थिति की भावना सदैव बनी रहती है। भारतीय संतों के ‘चरित’ साहित्य पर अनुसंधान कर कैलेवेयर्ट और स्नेल (1994) ने जो लिखा है, उसके आधार पर हम कुछ प्रतिमान यहाँ उद्धृत कर सकते हैं – 1) ऐतिहासिक दृष्टि से ये चरित भले ही सत्य न हों, या कल्पना के आधार पर ही लिखे गए हों, किंतु वे न केवल उस परम्परा की मूलभूत अवधारणाओं को चित्रित करते हैं, बल्कि यह भी दर्शाते हैं कि किस प्रकार समय-काल बीतने पर भी वह परम्परा अपने को सजीव रखती है। 2) ये चरित भक्ति-भाव से ओत-प्रोत होते हैं। 3) उनकी रचना करने वाले भक्त के लिये अपने इष्ट संत का गुण-गान उनके साथ सत्संग से कम नहीं होता। 4) उस चरित का पारण करने वाले से यह अपेक्षा होती है कि वह उस परम्परा की विशिष्टताओं के प्रति सद्भावपूर्ण ज्ञान प्राप्त करे। 5) बहुधा ऐसे चरित में एक संत-परम्परा का दूसरी संत-परम्परा से स्पर्धा का भाव भी परिलक्षित होता है। 6) जैसे-जैसे संत-विशेष के प्रति जनमानस में जिज्ञासा बढ़ती है, कालांतर में वैसे-वैसे उनकी जीवनी और विस्तृत होती जाती है, जबकि उनके जीवन काल के तुरत बाद का चरित इतना विस्तृत नहीं होता। 7) चरित के द्वारा धर्मगुरु की प्रभुता की स्थापना भी होती है। इन प्रतिमानों को देखने से हम समझ सकते हैं कि ऐतिहासिक सत्य की खोज में लगे शोधकर्त्ता और ‘मिथकीय’ कथा-रस में सिक्त भक्तों के बीच एक प्रकार का तनाव उत्पन्न हो जाना भी कोई आश्चर्य की बात नहीं।

इन प्रतिमानों के सत्यापन के लिये उदाहरण असंख्य हैं। उनमें संत कबीर का जीवन चरित विशेष रूप से अचम्भित करने वाला है। गंगाशरण शास्त्री, जो वाराणसी कबीरचौरा मठ के मुख्य व्यवस्थापक थे, ने बहुत भाव से उनका जीवन चरित लिखा है। उनका लिखना है कि कबीर न तो कोरी जाति से थे, न कभी उन्होंने

इस्लाम धर्म की दीक्षा ली। "वे तो स्वयंभू प्रकट पुरुष अनंत जन्म के जोगी थे" (1991, प्रस्तावना 17)। संत कबीर के जन्म के क्षण के विषय में वे लिखते हैं,

> इसी बीच एकाएक शुभ निनाद सुनाई पड़ा – 'जो जहाँ है वहीं पर रुक जाय। अब सूर्य का उदय हो गया है। सभी को सौम्य प्रकाश प्राप्त होगा। कबीररूपी सूर्य ने प्राची दिशा में पृथ्वी पर पदार्पण कर दिया है। (1991, प्रथमालोक 2)

आगे, वे संत कबीर के पृथ्वी पर आगमन का वर्णन करते हैं –

> लहरतारा सरोवर में ज्येष्ठ पूर्णिमा की अर्धरात्रि में, सोमवार के दिन ढलते हुए रात्रि की बेला में पूर्णरूपेण सन्नाटा छाया था। भूत-गणों का नृत्य हो रहा था। उनके मध्य में भगवान् शंकर शृंगी टेर रहे थे। थोड़ी ही दूर पर संत अष्टानंद स्वामी की कुटिया थी, जिसमें आसनारूढ़ होकर श्रीराम नाम का वे जप कर रहे थे। उसी समय अचानक लहरतारा के कमल-दलों पर एक अद्भुत देदीप्यमान ज्योति आकाश मण्डल से मेघमालाओं का भेदन करती हुई आई और नवजात शिशु के रूप में परिणत हो गई। चारों ओर प्रकाश छा गया। सम्पूर्ण सरोवर में आभा छिटक गई। सरोवर की कमल कलियाँ खिल गई। जल-जंतु केलि-क्रीड़ा करने लगे। पृथ्वी के सभी स्थानों पर पूर्ण शांति का आभास हो गया। लोगों के मन में राम नाम का उच्चारण सहज में ही होने लगा। (1991, प्रथमालोक 3)

इसके बाद शास्त्री चरित कथा को आगे बढ़ाते हुए बताते हैं कि किस प्रकार चमत्कारिक ढंग से नीमा और नीरू तंतुवाय वहाँ पहुँचे और बालक को उठा लिया, किस प्रकार नरसिंह भगवान ने कबीर का सुन्नत संस्कार होने से रोक दिया, किस प्रकार कबीर विष्णु के अंशावतार हैं, किस प्रकार कबीर ने गोरखनाथ को शास्त्रार्थ में चमत्कार कर हराया और उनका नाम रामरक्षादास रखा, किस प्रकार जब भक्तों की भीड़ बहुत बढ़ गई तब उन्होंने एक बोतल में गंगाजल भर कर मदिरापान करने का स्वांग करते हुए एक भक्तिन वेश्या के कंधे पर हाथ रखकर बाज़ार के बीच से गमन किया इत्यादि। शास्त्री पर्याप्त विस्तार से सिकंदर लोदी द्वारा कबीर को मारने के प्रयासों का वर्णन करते हैं। वे बताते हैं कि सुल्तान ने उन्हें बेड़ियों में जकड़ कर गंगा में डूब जाने के लिये फेंकवा दिया। किंतु जल का स्पर्श करते ही वे बेड़ियाँ स्वयंमेव टूट गईं और कबीर गंगा तीर पर मृगचर्म पर आसनस्थ दिखे। जब यह प्रयास विफल हो गया तो सुल्तान लोदी ने उन्हें एक झोपड़ी में बंद कर झोपड़ी को आग लगवा दी। सबकुछ तो जलकर राख हो गया, केवल कबीर एक विचित्र तेज से देदीप्यमान हो बाहर निकल आये। सुल्तान ने तीसरी बार प्रयास किया। उसने एक बहुत ही गहरा गड्ढा खुदवाया और उसमें कबीर को दफ़न कर दिया। लेकिन क्षणभर में ही कबीर निकल कर बाहर आ गये। सुल्तान ने अबकी बार चौथा प्रयास किया। उसने एक मतवाले हाथी से कबीर को कुचलवा देने की योजना बनाई। किंतु जब हाथी को कबीर के समक्ष लाया गया, तो वहाँ उसने नरसिंह को दहाड़ते हुए देखा। यह देखकर हाथी डरकर उल्टी दिशा में भाग गया (1991, 151-5)। शास्त्री के अनुसार संत कबीर का जन्म विक्रमी संवत 1456 (ख्रीस्ताब्द 1399) में हुआ और महाप्रयाण वि.सं. 1575 (1518) में। इन तिथियों के आधार पर संत कबीर की आयु लगभग 120 वर्ष बैठती है। इस दीर्घायु का निश्चित रूप से अनुमोदन न करते हुए भी लोरेंज़ेन लिखते हैं कि "यह प्राय: निश्चित है कि कबीर पंद्रहवीं शताब्दी के अंतिम वर्षों और सोलहवीं के आरम्भ में सक्रिय थे" (1991, xii)।

परम्परा से बाहर का कोई व्यक्ति यदि संत कबीर की इन अलौकिक कथाओं को पढ़े या सुने तो उसे किंवदंती का आभास हो सकता है, लेकिन ध्यान से पढ़ने पर हम स्वयं शास्त्री के भक्ति भाव के आनंद का अनुभव कर सकते हैं जब वे हर कथा का पूर्ण विस्तार से आख्यान करते हैं। इन कथाओं को लिखकर वे संत कबीर के विषय में जनमानस में व्याप्त कथाओं को भी एक स्थान पर संग्रहीत कर देते हैं, जिनसे कबीरपंथ के भक्त लोग तो अवश्य पहले से ही परिचित होंगे, किंतु पुनर्श्रवण कर उनमें नव-भक्ति का संचार होता होगा। इन कथाओं को पढ़कर, यदि उनमें उसका विश्वास है तो, कोई भी यह नहीं सोच सकता है कि कबीर एक सामान्य मनुष्य थे, अपितु यह कि कबीर अवश्य ही किसी न किसी रूप में ईश्वरीय अवतार थे।

कुछ ऐसा ही हम संत दादू दयाल के जीवन वृत्त में भी देखते हैं। उनका भी जन्म, या कहें अवतार, चमत्कारिक विधि से दर्शाया गया है। हालाँकि कैलेवेयर्ट ने बहुत परिश्रम कर के अपने शोध में दिखाया है कि दादू दयाल की सबसे पुरानी जीवनी में स्पष्ट लिखा है कि उनका जन्म एक रुई धुनने वाले धुनिया सज्जन के घर में हुआ था, बाद की कथाएँ यह दर्शाती हैं कि एक ब्राह्मण दम्पति उनके माता-पिता रहे (कैलेवेयर्ट 1988, 19)। कथा यह प्राप्त होती है कि विक्रम संवत 1600 (ख्रीस्ताब्द 1543) में अहमदाबाद में लोधीराम नाम के एक ब्राह्मण व्यापारी रहते थे जिनको कोई संतान न थी। एक दिन उन्हें एक संत मिले जिन्होंने आशीर्वाद देते हुए बताया कि अगले दिन जब वे साबरमती नदी में स्नान कर रहे होंगे तब उन्हें तैरते हुए एक विशाल कमल पर दिव्य बालक लेटा हुआ मिलेगा। वही उनका पुत्र होगा। लोधीराम जी के हर्ष का पारावार न रहा। अगले दिन जब उन्होंने नदी में डुबकी लगाकर सिर बाहर निकाला तो उन्हें कमल पुष्प पर तैरता वह बालक

दिखा। जैसे ही उन्होंने उसे उठाया, आकाश में देव-किन्नर-गंधर्व प्रकट होकर जय-जयकार करने लगे। साथ ही में दिव्य पुष्प एवं केशर की वर्षा करने लगे। अप्सराएँ नृत्य करते हुए यशोगान करने लगीं। दिव्य वाद्य यंत्रों की झंकार से सारा वातावरण गुंजारित हो उठा। सात वर्ष की आयु में कांकरिया तालाब के पास एक 'बूढ़े महात्मा' ने उनको आशीर्वाद सहित ज्ञान का प्रसाद दे दिया, और पुन: ग्यारह वर्ष की आयु में उन्हें संसार को उपदेश देने की प्रेरणा दी। दादूजी ने भ्रमण करना आरम्भ किया। इस काल में सीकरी में 40 दिनों तक बादशाह अकबर के साथ उनका सत्संग चलता रहा, और वहीं उन्होंने एक चमत्कार दिखाया जहाँ वे एक दैवीय सिंहासन पर बैठे हुए नज़र आए। वहाँ से घूमते-घूमते नारायणा पहुँचे। वहाँ जब वे सात दिनों तक एकांतवास कर चुके तो आठवें दिन एक नाग उनके पास आया और अपने पीछे चलने का इंगित किया। उसका अनुसरण करते हुए वे एक राजस्थानी शमी वृक्ष के नीचे पहुँचे, और नाग के अदृश्य हो जाने पर वहाँ पद्मासन लगाकर आत्मचिंतन में लीन हो गए। ऐसा होने पर उनके अंग-प्रत्यंग से एक दिव्य तेज पूरे वातावरण में नि:सृत होने लगा। किसी प्रेरणा से राजा नारायणदास भी वहाँ पहुँचे और यह दृश्य देखा। उन्होंने यह भी देखा कि दादूजी के आस-पास कुछ ऐसे प्राणी घूम रहे थे जिनका मुख तो मनुष्य के जैसा था पर शरीर पशु का, और कुछ ऐसे जिनका मुख पशु का था लेकिन शरीर मानव का। तीन दिनों पश्चात् दादूजी के नेत्र खुले और उन्होंने 'सत्यराम' मंत्र का उच्चारण किया। विक्रम संवत 1660 में, जब उनके शरीर त्यागने का समय आया, तो चार दिव्य पुरुष पालकी लिये हुए आकाशमार्ग से आए, और अगले दिन उस पर सवार होकर दादूजी अपने निजधाम की ओर प्रस्थान कर गए (श्री दादूवाणी, ति.अ., 8-17)।

दादूजी के जीवन चरित में भी हम देखते हैं कि उनका दैवीय आविर्भाव उनकी शिक्षा को शक्ति और गति दोनों देता है। हिंदू-मुस्लिम एकता के जिस आदर्श का उन्होंने पालन किया, वह उनकी अलौकिक छवि के कारण और कारगर हुआ। धन और मान के प्रति उपेक्षा का जो भाव उन्होंने अपनी जीवन-शैली में दर्शाया, वह उनके भक्तों के लिये प्रेरणा का स्रोत रहा। चूँकि उन्होंने कई स्थानों की यात्राएँ कीं, उनका अनुसरण करने वालों को उनसे सम्बंधित पवित्र स्थलों का भी ज्ञान उनके जीवन वृत्त से मिल जाता है।

आइये अब एक दृष्टि संत ज्ञानेश्वर की जीवनी पर भी डालते हैं। अभी तक हमने जो उदाहरण देखे हैं उनसे संत ज्ञानेश्वर का जीवन कुछ भिन्न है, शायद इसलिये कि कृष्ण-भक्ति प्रतिपादित करते हुए भी वे और उनके पूर्वज 'नाथ' गुरु से दीक्षित हुए थे। उनके माता-पिता को मध्यमवय में दो-दो वर्षों के अंतराल पर तीन बालकों और एक बालिका के जन्म का सौभाग्य प्राप्त हुआ। सबसे पहले विक्रम संवत 1330 (ईस्वी 1273) में निवृत्तिनाथ, तत्पश्चात् 1332 (ईस्वी 1275) में ज्ञानेश्वर, पुन: 1334 (ईस्वी 1277) में सोपानदेव और अंत में 1336 (ईस्वी 1279) में मुक्ताबाई जन्मे (पांगारकर 1933, 58; वर्मा 2005, 4)। इन चारों के जन्म के समय दैवीय जन्म के वर्णनों से मेल खाता न तो आकाश में कोई प्रकाशपुंज उत्पन्न हुआ, न कोई चमत्कारिक पुष्प प्रकट हुआ, न ही वसुंधरा में कोई अतिरेक दृष्टिगोचर हुआ। किंतु फिर भी इनके जन्म एक चमत्कार ही कहे जा सकते हैं क्योंकि ये चारों एक संन्यासी की संतान हुए। इनके पिता, और पिता के श्वसुर, दोनों को स्वप्न में भगवान विट्ठल ने रुक्मिणी बाई से विवाह का निर्देश दिया था ताकि उसके गर्भ से ईश्वरांश संतान उत्पन्न हो सके। परंतु विवाह पश्चात् इन चारों के जन्म से वैरागी पिता विट्ठलपंत ने, शीघ्र संतानोत्पत्ति न होने से संन्यास-ग्रहण में अधीरता दिखलाते हुए, युवा पत्नी के रहते हुए, काशी जाकर रामानंदस्वामी से असत्य बोलकर शास्त्रविरुद्ध संन्यास दीक्षा ले ली। उसका परिणाम यह हुआ कि हृदय-विदीर्ण पति-परायणा रुक्मिणी बाई ने बारह वर्षों तक 'उग्र-अनुष्ठान' किया जहाँ वे

> नित्य ब्राह्म-मुहूर्त में उठतीं, इंद्रायणी में स्नान करतीं, मध्याह्नकाल तक अश्वत्थ की परिक्रमाएँ करतीं, मुख से नाम-जप करतीं, एकवेणी और एकभुक्त रहतीं, कोई लौकिक बात न सुनतीं, न कहतीं, इस प्रकार रात-दिन भगवान की सेवा में रहती थीं। (पांगारकर 1933, 49)

उनकी यह साधना बारह वर्षों तक चली। और फिर एक चमत्कार हुआ। काशी से रामानंदजी अपने कुछ शिष्यों के साथ रामेश्वरम यात्रा के लिये निकले। संयोग से उन्होंने रुक्मिणी बाई के गाँव आलिंदी में पड़ाव डाला। संयोग से ही रुक्मिणी बाई की दृष्टि उन पर पड़ी और उन्होंने श्रद्धा से रामानंद जी को प्रणाम किया। स्वभाव से दयालु रामानंद जी के मुख से निकल गया, "पुत्रवती भव"। संयोग से ही विनयशीला रुक्मिणी बाई की हँसी छूट गई, जिसपर रामानंद जी ने कारण पूछा। रुक्मिणी बाई ने बता दिया कि पति ने तो संन्यास ले लिया है, अब पुत्र कैसे हो सकता है। रामानंद जी को दया आ गई, उन्होंने पति का रूप-रंग पूछा, और यह अनुमान लगा लिया कि उनका शिष्य चैतन्य आश्रम ही रुक्मिणी का पति है। वापस जाकर उन्होंने विट्ठल पंत को पुन: गृहस्थाश्रम में भेज दिया। विट्ठल पंत ने इसको गुरु आज्ञा समझकर शिरोधार्य तो कर लिया, किंतु गाँव में उनके ब्राह्मण समाज ने संन्यास से गृहस्थाश्रम में लौटने के अपराध में उन्हें बहिष्कृत कर दिया। विट्ठल पंत और उनकी पत्नी ने अत्यंत कष्ट में जीवन व्यतीत किया, लेकिन ऐसे ही संसार के आकर्षण से मुक्त तपस्या रत माता-पिता की ये चार विलक्षण संतानें हुईं। अंतत: ब्राह्मण समाज के इस कोप के निदान हेतु विट्ठल पंत और उनकी पत्नी ने प्रयाग जाकर जल-समाधि ले ली। अब चारों बच्चे असहाय तो हो गए, किंतु पहले

पुत्र निवृत्ति को लगभग सात वर्ष की आयु में चमत्कारिक रूप से एक बाघ के आ जाने पर त्र्यम्बकेश्वर की एक गुफा में नाथ योगी गहनीनाथ से कृष्ण भक्ति की दीक्षा मिल चुकी थी, और ये ही अपने छोटे भाई ज्ञानेश्वर के गुरु भी हुए। इन सभी ने कष्ट सहकर, लोगों की सहायता हेतु और ब्राह्मण समाज की आँखें खोलने के उद्देश्य से चमत्कार प्रदर्शन किये। संत ज्ञानेश्वर ने पंद्रह वर्ष की आयु में भगवद्गीता की व्याख्या के रुप में ज्ञानेश्वरी की रचना की, और उसके बाद अमृतानुभव की भी। जीवन के इक्कीसवें वर्ष में उन्होंने समाधि ले ली, और उसके कुछ वर्षों के बाद उनके भाई-बहनों ने भी इसी मार्ग का अनुसरण किया (देखें वर्मा 2005, प्रस्तावना)।

इसी प्रकार जब हम संत नामदेव के जीवन को देखते हैं तो भी कई प्रकार के चमत्कार उजागर हो जाते हैं। उदाहरण के लिये, यह धारणा है कि नामदेव जी का 'जन्म' नहीं हुआ था, उन्हें चंद्रभागा नदी में एक 'सीपी' में बहते पाया गया था। उनके जन्म के समय, उन्हें सनत्कुमार का अवतार मानते हुए इंद्र, कुबेर, वरुण, ब्रह्मा, शिव, विष्णु ने पृथ्वी पर पुष्प वर्षा की थी और सम्पूर्ण आकाशमण्डल दैवीय संगीत की धुन से गुंजायमान हो गया था (माचवे 1990, vi, 12)। किंवदंती है कि आठ वर्ष की आयु में उनकी माता ने जब विट्ठल मंदिर में उन्हें दूध का नैवेद्य चढ़ाने भेजा था, तब बालकोचित भोलेपन से वे वहाँ प्रार्थना करते हुए तब तक बैठे रहे जब तक कि भगवद् मूर्त्ति ने हाथ बढ़ाकर दूध न पी लिया। कहा जाता है कि जब उन्होंने संत ज्ञानेश्वर के साथ उत्तर भारत की यात्रा की तब मारवाड़ में 'कोलादजी' नामक ग्राम के निकट उन्हें बहुत प्यास लगी। कुँआ बहुत गहरा था। संत ज्ञानदेव तो सूक्ष्म शरीर धारण कर कुँए में अंदर जाकर जल पी आए, लेकिन नामदेव वहीं बैठकर 'विट्ठल विट्ठल' की रट लगाने लगे। कुछ ही देर में पानी कुँए की सतह तक आ गया (शर्मा 1957, 99-100)। उनके अन्य चमत्कारों में सुल्तान की आज्ञा से मृत गाय को जीवित करना, मंदिर के सामने भजन करने की मनाही पर पश्चिम की ओर जाकर भजन करना और मंदिर का उस ओर घूम जाना, भगवान का साहूकार वेष धारण कर नामदेव के घर धन देना, समाधि ले लेने के पश्चात् भी संत ज्ञानेश्वर का व्याकुल नामदेव को दर्शन देना, नामदेव के घर रखे घोंडोबा नामक पत्थर का स्वर्ण में परिवर्तित हो जाना इत्यादि जाने जाते हैं। अन्य संतों की भाँति उनके भी जीवन-काल की तिथियाँ संदिग्ध हैं, लेकिन एक अवधारणा है कि उनका जन्म सन् 1270, और देहावसान सन् 1350 में हुआ था (जोग 1990, 2-3)।

भारत में संतों के जीवन-चरित से यह तो स्पष्ट हो ही जाता है कि ये संत आम लोगों से भिन्न थे, और इनमें बहुत से ऐसे कार्य करने की क्षमता थी जो हर व्यक्ति नहीं कर सकता। यदि अन्य धर्मों को देखें, तो वहाँ भी संतों की अवधारणा इससे भिन्न नहीं मिलती। ईसाई धर्म में देखें तो हम पाएँगे कि वहाँ भी संत रोगियों को चमत्कार से स्वस्थ कर देते हैं, भूत-बाधा से मुक्त कर देते हैं, मृत्यु पर्यंत उनके शरीर से दुर्गंध के स्थान पर सुगंध आती है और वे सड़ते नहीं, वे मृत व्यक्तियों को जीवित कर देते हैं, जल पर ऐसे चल लेते हैं मानों पृथ्वी पर चल रहे हों, थोड़ी सी खाद्य-सामग्री को बहुत कर दे सकते हैं, पशु-पक्षियों से वार्तालाप कर सकते हैं, उड़ सकते हैं, आकाशगमन कर सकते हैं, और वे अज्ञात भाषाओं में बोल सकते हैं। ऐसे चमत्कारों के लिये हम कुछ थोड़े से उदाहरण देख लेते हैं। जब संत फ़्रांसिस ज़ेवियर (1506-1552) कोचीन में आए तो कहा जाता है उन्होंने एक मृत या मरणासन्न युवक को जीवित कर दिया था। गोवा में मृत्यु-शय्या पर पड़ा उनका एक सहयोगी उनको देख कर ही स्वस्थ हो गया था। एक अन्य युवक, जिसको लोग प्रेत-बाधा से ग्रसित मानते थे, संत ज़ेवियर द्वारा धर्म-ग्रंथ को सुनकर ठीक हो गया था (स्टुवर्ट 1918, 339-40)। ग्यारहवीं-बारहवीं शताब्दी में यूरोप में ईसाई धर्म को बहुत संघर्ष झेलना पड़ रहा था। रोमान्या राज्य के रिमिनी शहर में संत ऐंथनी (ईस्वी 1195-1231) को जनता का धर्मांतरण करने के लिये भेजा गया। जब उनके प्रवचन को सुनने कोई नहीं आया तो वे उस स्थान पर गए जहाँ मारेक्किया नदी एड्रियाटिक सागर में गिरती है। वहाँ खड़े होकर उच्च स्वर में उन्होंने समुद्री जीवों को प्रवचन सुनने के लिये बुलाया। तत्क्षण समुद्र में हलचल होने लगी और असंख्य छोटी-बड़ी मछलियाँ एकत्रित हो गईं। संत ऐंथनी ने प्रवचन आरम्भ किया और उनके शब्दों को सुनकर समुद्री जंतु सिर हिला-हिलाकर अनुमोदन करने लगे। यह दृश्य देखकर हजारों लोग वहाँ एकत्रित हो गये। जब उन्होंने प्रवचन समाप्त कर के मछलियों को लौट जाने का आदेश दे दिया, तभी वे वहाँ से हटीं। वहाँ एकत्रित हो चुके लोग यह सब देखकर न केवल हतप्रभ रह गए, बल्कि उन्होंने संत के चरणों में गिरकर उनको स्वीकार कर लिया (केलर 1899, 13-9)। महिला संतों में सिएना की संत कैथरीन (ईस्वी 1347-1380) का उदाहरण विलक्षण है। उनके माता-पिता को 25 संतानें हुईं जिनमें यह 24वीं थीं। बचपन से ही इनको ईसा मसीह के प्रति प्रगाढ़ आस्था थी और इनका विश्वास था कि इनका विवाह ईसा मसीह से हो चुका था। इस विश्वास के साथ इनमें अदम्य शक्ति का आविर्भाव हुआ जिससे ये अनपढ़ होते हुए भी पढ़ती थीं, सीढ़ियों के ऊपर उड़ते हुए चढ़ जाती थीं, और लोगों के कष्टों को दूर करने में अपना जीवन बिताती थीं। ये कुछ खाती नहीं थीं, किंतु इस उपवास से क्षीण-काय होने के बदले उनकी शक्ति और विकसित हो गई थी (देखें रेमंड 1960)।

संत-चरित की इन विशेषताओं को ध्यान में रख अब हम बाबा कीनाराम के संदर्भ में प्रचलित कथाओं को देखते हैं, यह जानते हुए कि भारत के मध्यकालीन संतों के विषय में सही जानकारी पाना अत्यंत कठिन है। चूँकि संत-चरित में ऐतिहासिक जानकारी का अभाव कल्पनाशीलता का अजस्र स्रोत होता है, यह आश्चर्य का विषय नहीं कि उनकी बहुत सी कथाएँ अन्य संतों के चरित से मेल खाती हैं। शोधकर्ताओं ने यह पाया है कि संत-कथा जितनी हाल ही में लिखी हुई होगी उतनी ही अधिक मात्रा में उसमें विस्तृत जानकारी होगी,

और जो अन्य संतों के जीवन चरित्र से बहुत भिन्न नहीं होगी (लोरेंज़ेन 1995, 183)। भारत में सभी संतों के जीवन चरित में हम उन्हें भ्रमण करते हुए पाते हैं। ऊपर जिन संतों के उदाहरण हमने लिये हैं उनमें संत ज्ञानेश्वर ने भी भ्रमण किया, और उनके साथ संत नामदेव का भी उत्तर भारत में तीर्थयात्रा करने का उल्लेख मिलता है। यह भी संदेह का विषय नहीं कि नामदेव पंजाब भी गए थे, वहाँ के घूमन नामक गाँव से उनका अंतरंग सम्बंध माना जाता है। संत ज्ञानेश्वर के बड़े भाई निवृत्तिनाथ ही उनके गुरु थे, और जो भ्रमणशीलता योगिसम्प्रदायाविष्कृति: में मत्स्येंद्रनाथ और गोरक्षनाथ के चरित्र में परिलक्षित होती है, वैसी ही अघोर और नाथ पंथ के साधुओं के चरित्र में पायी जाती है। कबीरदास के पदों में गोरखानाथ के माने जाने वाले कई पद पाये जाते हैं, और हालाँकि उनको नाथपंथी नहीं कहा जाता है, उनका यात्रावृत्तांत इतना अचरजपूर्ण है कि कुछ लोग यह भी मानते हैं कि वे समरकंद, ईरान, तुर्की, ईराक, मक्का-मदीना, मिस्र, जेरुशलम होते हुए इटली में रोम तक हो आए थे (शास्त्री 1991, 113-5)। मत्स्येंद्रनाथ के हिंगलाज जाने का वर्णन योगिसम्प्रदायाविष्कृति: में मिलता है (योगी 1924, 57-64), जैसा कि बाबा कीनाराम के जीवन चरित में भी है (सिंह 1999, 67-8)।[12] सम्भव है कि जिस प्रकार भारत में साधु जन आज भी नर्मदा नदी के दोनों किनारों की परिक्रमा करते हुए तीर्थयात्रा करते हैं, वैसे ही प्राचीन काल से अघोर और नाथ परम्पराओं में पूर्व में कामाख्या से पश्चिम में हिंगलाज शक्तिपीठों की यात्रा की भी परम्परा रही हो (हाउज़्नर 2007, 105)। किंतु दोनों के वर्णनों में अंतर यह है कि मत्स्येंद्रनाथ को अपनी शक्ति का लोहा मनवाते प्रदर्शित किया जाता है, जब कि बाबा कीनाराम एक विनीत भक्त की भाँति नतमस्तक रहते हैं। कबीर और बाबा कीनाराम के साहित्य में एक प्रसंग मदिरा और वेश्या के सान्निध्य का भी मिलता है। जब कबीर साहब की प्रतिष्ठा बहुत बढ़ गई तो उनके यहाँ बहुत भीड़ होने लगी। इससे छुटकारा पाने के लिये कबीरदास ने एक युक्ति निकाली। एक बड़ी बोतल में गंगाजल भरकर एक भक्त वेश्या के दायें कंधे पर बायाँ हाथ रख मदिरा की भाँति बोतल मुँह में लगाए बाज़ार से निकले। लोगों को संदेह हो गया कि कबीरदास गिर गए हैं और भीड़ छँट गई (शास्त्री 1991, 67-9)। सन् 1953 में छपे आज अखबार में बिल्कुल यही कथा बाबा कीनाराम के विषय में छपी थी। मदिरापान की इस से मिलती-जुलती कथा को संत तुलसीदास की आँखें खोलने के संदर्भ में भी बाबा कीनाराम द्वारा किया गया बताया गया है (काटवे 1949, 125)। इन संतों द्वारा प्रदर्शित चमत्कारों पर दृष्टि डालें तो संत ज्ञानेश्वर भैंस के मुख से वेदपाठ करवा देते हैं (वर्मा 2005, 9; पांगारकर 1933, 101), संत कबीर भी भैंस से ही ऐसा करवाते हैं (शास्त्री 1991, 137), और बाबा कीनाराम एक गधे के मुख से वेदपाठ करवा देते हैं (चतुर्वेदी 1973, 88)। संत ज्ञानेश्वर ने सच्चिदानंद नाम के व्यक्ति को जिला दिया था और उन्होंने ही ज्ञानेश्वरी को लिपिबद्ध किया (पांगारकर 1933, 118-9)। कबीर ने शेख़ तकी के कहने से एक बहती हुई लाश को जीवित कर दिया और उसे 'कमाल' नाम दिया क्योंकि वह ईश्वर के कमाल से जीवित हुआ था (शास्त्री 1991, 101)। उन्होंने शेख़ तकी की मृत कन्या को भी जीवित कर दिया और उसे 'कमाली' नाम दिया (लोरेंज़ेन 1991, 51)।[13] बाबा कीनाराम ने इसी प्रकार बहते हुए मुर्दे को बाबा कालूराम के कहने से जीवित कर के 'रामजियावनराम' नाम दिया क्योंकि वह राम की कृपा से जीवित हो पाये थे, और बाद में वह सिद्ध महात्मा बन गए (चतुर्वेदी 1973, 103)। संत नामदेव के विषय में भी, सुल्तान के कहने पर, एक गाय को जीवित कर देने की कथा मिलती है (जोग 1990, 3)।

एक चमत्कार कथा जो विशेष रूप से बाबा कीनाराम के जीवन चरित्र से सम्बंधित मानी जाती है, वह कबीरदास की जीवनी में भी प्राप्य है, और बनारस के औघड़ नाथ की तकिया के कथित 950 साल पहले हुए औघड़ नाथ नाम के संन्यासी के बारे में भी (गुप्ता 1993, 62)। कबीरदास का प्रकरण यह है। वे यात्रा करते हुए बलख शहर में पहुँच गए। वहाँ का सुल्तान इब्राहिम साधु-संतों को पकड़कर जेल में बंद करवा देता था और उनसे आटे की चक्की चलवाता था। संत कबीर के साथ भी ऐसा ही किया गया। जेल में पहुँचकर उन्होंने सभी साधुओं को चक्की चलाना बंद कर के 'राम-राम' रटने को कहा। जब साधुओं ने ऐसा किया तो सारी की सारी चक्कियाँ स्वत: चलने लगीं। साथ ही राजकुमार और राजकुमारी पागल हो गए और शहर की इमारतें काँपने लगीं। सुल्तान इब्राहिम ने दौड़कर कबीर साहब के चरण धरे। उन्होंने उसे क्षमा दान देकर सभी बंदी संतों को छुड़ा लिया। तभी से संत कबीर का एक नाम 'बंदीछोड़' भी पड़ गया (शास्त्री 1991, 109-11)। बाबा कीनाराम की कथा इस प्रकार है। अपने शिष्य बीजाराम को साथ लेकर वे भ्रमण करते हुए गुजरात में जूनागढ़ पहुँचे। यह रियासत मुग़ल साम्राज्य द्वारा नियुक्त नवाबों द्वारा संचालित थी। वहाँ का नवाब भिक्षा माँगने वाले साधु-फकीरों को जेल में बंद करवा देता था। बाबा कीनाराम तो शहर के बाहर रुक गए और बीजाराम को उन्होंने दोनों के लिये भिक्षाटन के उद्देश्य से शहर में भेज दिया। जब बीजाराम शहर में पहुँचे और

12 बाबा कीनाराम की जीवनी में हिंगलाज यात्रा का यह प्रकरण बाद के साहित्य में ही मिलता है। इसका उल्लेख समूह द्वारा प्रकाशित परवर्ती साहित्य अघोराचार्य महाराज श्री कीनाराम जी की संक्षिप्त जीवन चित्रावली में, और उसके बाद औघड़ राम कीना कथा में मिलने लगता है। हाँ, शोभनाथ लाल द्वारा 1973 में ऋतम्भरा पत्रिका में लिखे लेख में अवश्य हिंगलाज का उल्लेख है।

13 कमाल और कमाली को जीवित कर देने की कथाएँ केवल कबीर पंथ द्वारा प्रकाशित साहित्य में मिलती हैं। इनका उद्देश्य यह दर्शाना प्रतीत होता है कि कबीर आजीवन एक ब्रह्मचारी साधु रहे (लोरेंज़ेन 1991, 50)।

सड़क पर भिक्षा की याचना की तो सिपाहियों ने उन्हें देख लिया और ले जाकर जेल में बंद कर दिया। जब वे देर शाम तक वापस नहीं पहुँचे तो बाबा कीनाराम ने समाधि की अवस्था में यह जान लिया कि क्या हुआ है। उन्होंने इसके विषय में कुछ करने का निश्चय किया। नवाब की जेल में बंद साधुओं को छुड़ाने के लिये उन्हों-ने अपने ही ढंग का अहिंसात्मक सत्याग्रह खोज निकाला। वे स्वयं शहर में गए और भिक्षा माँगने लगे। शीघ्र ही उन्हें भी जेल में बंद कर दिया गया। जेल में 981 चक्कियाँ थीं जिन्हें कैदी आटा बनाने के लिये हाथ से चलाते थे। उनको भी चलाने के लिये एक चक्की दी गई। बाबा ने चक्की को चलने के लिये कहा। वह नहीं चली। तो बाबा ने उसपर अपनी कुबड़ी (लाठी) ठोंक दी और जेल में उपस्थित सभी 981 चक्कियाँ अपने आप चलने लगीं। सिपाहियों ने यह देखा तो उनका मुँह खुला का खुला रह गया। अन्य कैदियों को भी घोर आश्चर्य हुआ। सिपाही दौड़ कर नवाब के पास गए और उससे सारा किस्सा कह सुनाया। नवाब पर इस बात का काफ़ी प्रभाव पड़ा। उसने बाबा को अपने महल में आमंत्रित किया और भेंट-स्वरूप उन्हें रत्नों का थाल दिया। बाबा ने उनमें से कुछ को उठाकर मुँह में डाला, फिर मुँह बिसूरते हुए यह कहकर थूक दिया कि 'यह न तो खट्टा है न मीठा'। नवाब समझ गया कि बाबा किसी और ही मिट्टी के बने हुए थे, और उनसे पूछा कि वह कैसे उनकी सेवा करे? बाबा कीनाराम ने उसे सभी साधुओं को मुक्त करने के अतिरिक्त उनके नाम पर शहर में आने वाले हर भिक्षुक को आधा किलो आटा देने को कहा। नवाब ने उनकी बात स्वीकार कर ली, और बाबा के आशीर्वाद से उसका परिवार फला-फूला (चतुर्वेदी 1973, 102)।. यह घटना विक्रम संवत 1724 (सन् 1667, चतुर्वेदी 1951, 629; शास्त्री 1959, 138) में घटी कही जाती है।

सन् 1915 में उस काल की प्रतिष्ठित साहित्यिक हिंदी पत्रिका सरस्वती में श्रीयुत गदाधरसिंह भृगुवंशी ने एक लेख 'अघोर मत प्रवर्तक बाबा किनारामजी' शीर्षक से लिखा। उसमें जूनागढ़ की जेल में चक्कियाँ चलवाने वाली इस कथा के विषय में वह एक कविता का उद्धरण देते हुए लिखते हैं -

> इस यात्रा-प्रकरण को भक्त लोग इस प्रकार गाते हैं:-
> बद्री मुक्तेश्वर नयपाला । जगन्नाथ रामेश्वर वाला ॥
> सिरीनगर बस चले उजेना । जूनागढ़ जहँ साधु न सेना ॥
> सबसों जाँता साह पिसावे । उनका तेजभाव नहिं पावे ॥
> रामकिना पहुँचे तिहि ठामा । जाता चलन लगे तब रामा ॥
> वाह वाह करि दौड़ा राना । दण्ड प्रणाम किया बहु माना ॥
> कर जोरे पुनि चहा रजाई । सब संतन को दिया छुड़ाई ॥
> कछु चाहा पगि भक्ति सुधामा । कहो किना कहु "रामा रामा" ॥
> (भृगुवंशी, सरस्वती 1915(1)44)

एक चमत्कार कथा जिसका इतिहास बहुत पुराना है, और जो बहुत से संतों के जीवन के साथ जोड़ दी गई प्रतीत होती है, वह प्राय: संतों और सूफ़ी शेख़ों में शक्ति-प्रदर्शन की स्पर्धा के संदर्भ में कही जाती है। बाबा कीनाराम के चरित में यह कथा भीखा साहब (करीब सन् 1713-1763), जो गुलाल साहब के शिष्य थे, से भेंट के संदर्भ में इस प्रकार पायी जाती है -

> गाज़ीपुर जनपद के भुड़खुड़ा गाँव में भीखा शाह नाम के एक सुप्रसिद्ध संत रहते थे। उनकी कुटी मिट्टी की बनी थी, और उसी प्रकार की उनके अहाते की दीवार भी थी। बाबा कीनाराम भुड़खुड़ा गाँव की तरफ़ जा रहे थे। रास्ते में उन्हें एक पशु दिखा और उन्होंने उसकी पीठ पर हाथ फेरा। पलक झपकते ही वह शेर बन गया। बाबा कीनाराम अपनी यात्रा के लिये उसकी सवारी करने लगे। जब वे भीखा शाह की कुटी तक पहुँचे तो पाया कि वे अपने अहाते की दीवार पर बैठे दातुन कर रहे थे। जब उन्होंने बाबा कीनाराम को शेर की सवारी करते आते देखा तो उन्होंने दीवार से कहा, "तू भी आगे चल।" दीवार अपनी जगह से टूट-कर आगे चलने लगी। बाबा कीनाराम ने दीवार को यह कहते हुए डाँटा, "तू क्यों टूट रही है? वहीं रुक!" दीवार जहाँ की तहाँ रुक गई। उसमें एक लहर सी उत्पन्न हुई जिसके कारण भीखा शाह गिर पड़े और उन्हें कुछ चोट लग गई। उन्होंने उठकर बाबा कीनाराम का अभिवादन किया। बाबा कीनाराम ने उनके शरीर पर हाथ फेर दिया और तत्काल ही गिरने से लगी चोट ठीक हो गई। भीखा शाह की वह टूटी दीवार आज भी अपनी उसी टूटी अवस्था में खड़ी है (सिंह 1999, 48)।

यही कथा भीखा साहब की बानी और जीवन चरित्र (1909, 2) में भी पाई जाती है, लेकिन इस पुस्तक में शेर की सवारी करने वाले महात्मा कोई 'मौनी बाबा' बताए जाते हैं जो बोलते नहीं थे। कहानी के इस रूपां-तर में जब भीखा साहब मौनी बाबा को शेर की सवारी करते आते देखते हैं तो सोचते हैं कि ऐसे सिद्ध महा-त्मा का स्वागत भी सही ढंग से होना चाहिये, इसलिये वे दीवार को आगे चलने के लिये कहते हैं ताकि उनसे

आधे रास्ते में ही मिल लें। जैसा कि अनुमान लगाया जा सकता है, कहानी के अंत में मौनी बाबा भीखा साहब के चरणों में गिर पड़ते हैं।[14]

इस कथा पर पर्याप्त शोध हो चुका है। सबसे पहले शेर (या सिंह) की सवारी करने, और सर्प को चाबुक के रूप में प्रयुक्त करने की कथा अभयदत्त कृत वज्रयानी बौद्ध सिद्धों के ग्रंथ चतुरशीतिसिद्धप्रवृत्ति में सिद्ध डोम्बिपा के चरित्र में मिलती है। इसकी तिथि बारहवीं शताब्दी से कुछ पहले मानी जाती है (डिग्बी 1994, 103)। शेर पर सवारी और दीवार की सवारी का उल्लेख संत ज्ञानेश्वर और चांगदेव की कथा में है, जहाँ चांगदेव शेर पर आते हैं और संत ज्ञानेश्वर बैठे हुए दीवार को चला देते हैं (पांगारकर 1933, 160-1)। शेर पर और चलती दीवार पर सवारी करने की कथाएँ सोलहवीं शताब्दी के अंत काल में सिख जनम-साखियों में भी मिलती हैं, जहाँ प्राय: गुरुनानक देव की नाथ सिद्धों के साथ गोष्ठी होती है। जीवित सिंह ही नहीं, पत्थर की सिंह-मूर्ति पर सवारी करने की भी कथा तिब्बती बौद्ध साहित्य में मिलती है। ये कथाएँ मुस्लिम स्रोतों में भी प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं, पहले शेर और दीवार की अलग-अलग सवारी की कहानियों के रूप में, और फिर शेर और दीवार दोनों की सवारी की प्रतिस्पर्धा के रूप में। इस्लाम में ख्वाजा खिज्र का रूप हरे वस्त्र पहने हुए, शेर पर सवार और सर्प का चाबुक लिये हुए तुरत पहचान लिया जाता है। ईसाई धर्म में भी साइप्रस में मोर्फू के संत मामास की कथा लोकप्रिय है कि वे कभी कर-भुगतान नहीं करते थे, और जब इस कारण उन्हें निकोसिया के महल में बुलाया गया तो वे एक शेर पर सवार हो बाँहों में मेमने को लिये हुए पहुँचे (डिग्बी 1994, 103-8)। इन सब संदर्भों के उल्लेख से यही प्रतीत होता है कि ऐसी कथाएँ एक रूपक हैं जो भक्तों की भावनाओं के साथ संत की जीवनी से जुड़ती चली जाती हैं। संत चरित के समसामयिक अध्ययन इन कथाओं को केवल 'मिथक' मानकर इनकी अनदेखी नहीं कर देते, किंतु इनका महत्त्व दर्शाने का प्रयत्न इस बात से करते हैं कि किस प्रकार ये पूजनीय संत अपने भक्तों द्वारा देखे जाते हैं।

2.1 बाबा कीनाराम का जीवन चरित

बाबा कीनाराम की जीवन-गाथा को प्रामाणिक रूप से बताना कठिन है। इसलिये जिस प्रकार की कथाओं की चर्चा हम ऊपर कर आए हैं, वैसी ही और कथाएँ उनके जीवन की चारित्रिक विशेषता हैं। लेकिन उनके माध्यम से हम इतना तो जान लेते हैं कि भक्त और जनता उन्हें किस दृष्टिकोण से देखते हैं। विद्वानों ने बाबा कीनाराम के जीवन का ख़ाका अलग-अलग विस्तार के साथ लिखा है जिनमें आचार्य परशुराम चतुर्वेदी (1972, 690-5), धर्मेंद्र ब्रह्मचारी शास्त्री (1959, 137-40), आचार्य गोपीनाथ कविराज (1963, 197-8), शोभनाथ लाल (1973, 62-9), गया सिंह (2006, 118-156) गिने जा सकते हैं। बाबा कीनाराम की परम्परा ने भी कई पुस्तकों में यह विवरण दिया है जैसे चतुर्वेदी (1973, 99-103), श्री सर्वेश्वरी समूह द्वारा प्रकाशित चित्रावली (तिथि अज्ञात), इत्यादि। अंग्रेज़ी में गुप्ता ने इन्हीं स्रोतों के आधार पर बाबा कीनाराम और उनकी परम्परा के इतिहास को लिखा है, लेकिन उन्होंने भक्तों द्वारा सुनी कथाओं में उनकी भावनाओं का भी समावेश किया है (1993, 126-37)।[15] हम बाबा कीनाराम की परम्परा द्वारा प्रकाशित साहित्य के आधार पर यहाँ उनके जीवन-चरित की केवल कुछ ही बातें बता रहे हैं क्योंकि उनके ठोस प्रतीक उपस्थित हैं। उनके जीवन से जुड़ी अन्य बहुत सी कथाएँ किंवदंतियों के रूप में, या जैसा कि हम ऊपर संत-चरित का समालोकन करते समय देख आए हैं, रूपकों, या दंत-कथाओं के रूप में उपलब्ध हैं (देखें सिंह 1999)।

ग्रेगोरियन कैलेण्डर के अनुसार बाबा कीनाराम का जन्म सन् 1601 के आसपास हुआ था, हालाँकि उनकी जन्म-तिथि, और उनकी महाप्रयाण तिथियों के बारे में विद्वानों में मतभेद है। परम्परा के अनुसार विक्रम संवत 1658 में भाद्रपद मास के कृष्ण चतुर्दशी के दिन उनका जन्म हुआ। उनके जन्म का गाँव आज भी रामगढ़ नाम से जाना जाता है लेकिन पहले यह बनारस डिस्ट्रिक्ट के अंतर्गत पड़ता था और अब सकलडीहा राजस्व डिस्ट्रिक्ट में आता है (सिंह 2006, 118)। ये तीन भाइयों में सबसे बड़े थे, बाकी दो भाइयों के नाम गयंद और जसंत थे। उनके माता-पिता रघुवंशी क्षत्रिय थे, और उस समय इस क्षेत्र में इस जाति का वर्चस्व था (चतुर्वेदी 1972, 690-1; शास्त्री 1959, 137)। बाल्यावस्था से ही बाबा कीनाराम को विवाह या दाम्पत्य जीवन

14 शेर और दीवार की सवारी का यथार्थ जो भी हो, भीखा साहब और बाबा कीनाराम के विषय में अन्य कथाएँ भी प्रचलित हैं। एक प्रचलित कथा यह भी है कि एक बार बाबा कीनाराम भीखा साहब के यहाँ हो रहे एक जलसे में पहुँचे और पीने के लिये मदिरा का आग्रह किया। भीखा साहब के असमर्थता जताने पर बाबा कीनाराम ने उनके यहाँ उपलब्ध सभी जल को मदिरा में बदल दिया। किंतु भीखा साहब भी सिद्ध-पुरुष थे। उन्होंने जल को फिर अपने पूर्ववत रूप में लौटा लिया (भीखा साहब की बानी 1909, 2-3; कल्याण 12(1), 1937, 671)।

15 गुप्ता ने भारत में विस्तार से यात्राएँ कीं और अघोर परम्परा की विविधता तथा उसके ऐतिहासिक परिवर्तन के विषय में रोचक तथ्यों का अनुसंधान किया। लेकिन कीनाराम स्थल में उनका आरम्भिक अनुभव आशा के विपरीत रहा। औघड़ वैसे नहीं निकले जैसा कि वह अपने सोलह वर्ष पूर्व के अनुभव के आधार पर चाह रही थीं। जो औघड़ उनको मिले वे न विचित्र थे न अतिक्रामक, मध्यम-वर्गीय छवि वाले, जो स्थल की व्यवस्था में कुशलता से लगे थे। आशा और यथार्थ के इस असामंजस्य ने उनकी लेखनी के स्वर को प्रभावित कर दिया। फिर भी, अपनी खोज के प्रति उनकी निष्ठा उनके शोध की प्रस्तुति में स्पष्ट झलकती है।

में कोई रुचि नहीं थी। अपने बाल-मित्रों के साथ भजन करते हुए वे अक्सर देखे जाते थे। उस समय बचपन में ही विवाह कर देने की प्रथा थी और उनके माता-पिता ने अपने पुत्र कीना का विवाह 12 वर्ष की आयु में कर दिया था।[16] वह बालक शादी विवाह के बारे में क्या जानता था? उसकी पत्नी और भी छोटी थी इसलिये शादी के बाद वह पत्नी बनने की आयु परिपक्व हो जाने तक अपने माता पिता के घर में ही रही। गौने के एक दिन पहले उनका पंद्रह वर्षीय पुत्र दूध-भात खाने की हठ करने लगा। चूँकि दूध भात का भोजन मृत्यु संस्कारों से सम्बंधित है और अगली ही सुबह गाँव से उसकी बारात गौना कराने के लिये वधू के गाँव जाने वाली थी, उसका यह हठ नितांत अमंगलकारी था।[17] अकबर सिंह को इस पुत्र रत्न की प्राप्ति 60 वर्ष की आयु में हुई थी (सिंह 1999, 29)। उस बालक को कहीं नज़र न लग जाए इसके लिये उन्होंने यह टोटका भी किया कि किसी को उसको बेचकर पुन: वापस कीन (खरीद) लिया, जिससे कि बालक का नाम ही कीना पड़ गया।[18] उन्होंने बहुत प्रयास किया कि बालक अपना हठ छोड़ दे, लेकिन बालहठ के सामने किसकी चलती है? अंतत: बालक कीना ने दूध भात खाया। अगले दिन जब बारात तैयार हो रही थी तो वधू के गाँव से समाचार आया कि उसका तो पिछली शाम देहांत हो गया। अब गौना तो होना नहीं था। इस घटना ने बालक कीना के माता पिता समेत समस्त ग्रामवासियों को अचरज में डाल दिया। पहले तो लोगों ने अनुमान लगाया कि बालक कीना के दूध भात खा लेने के कारण ही यह अप्रिय घट गया, किंतु शीघ्र ही उन्हें मालूम हो गया कि कीना के हठ आरम्भ करने के पहले ही उनकी पत्नी का देहांत हो चुका था। तात्पर्य यह, कि दूध भात खाकर वह अपनी पत्नी की मृत्यु संस्कार वाली क्रिया कर रहे थे। लेकिन उन्हें पता कैसे चला? कीना के माता पिता को अब आभास होने लगा कि उनका पुत्र जैसा दिखता था उससे कहीं बहुत अधिक कुछ और था।

इसलिये जब उनके माता-पिता उन पर फिर विवाह करने का दबाव डालने लगे तो विरक्त होकर उन्होंने घर छोड़ दिया और घूमते हुए गाज़ीपुर जनपद के कारों ग्राम पहुँचे जहाँ बाबा शिवाराम नाम के एक रामानुजी सम्प्रदाय के संत रहते थे।[19] जैसा कि नाम से विदित है, इस परम्परा के संत भगवान विष्णु के, विशेषकर उनके राम रूप के, भक्त होते हैं। हालाँकि उन पर अधिक शोध नहीं किया गया है, इतना ज्ञात है कि उन्होंने योग और भक्ति पर कम से कम एक विशाल ग्रंथ की रचना की जिसका नाम भक्ति जैमाल है (लाल 1973)। उस क्षेत्र में उनका बहुत सम्मान और प्रतिष्ठा थी। बालक कीनाराम ने उनके साथ रहने की प्रार्थना, और उनसे दीक्षा की याचना की। किंतु बाबा शिवाराम ने तुरत उनको दीक्षा नहीं दी। हाँ, बालक कीनाराम को अपने यहाँ रहने की आज्ञा दे दी। कीनाराम ने गुरु रूप में उनकी सेवा आरम्भ कर दी। इस प्रकार उनकी सेवा करते हुए जब काफ़ी समय बीत गया तब प्रसन्न होकर एक दिन बाबा शिवाराम ने उनको दीक्षा देने का निर्णय लिया।

कथा है कि उस सुबह जब वे दोनों स्नान हेतु गंगा जी की ओर जा रहे थे तो बाबा शिवाराम ने अपनी पूजा सामग्री, कमण्डल, बाघाम्बर का आसन इत्यादि बालक कीनाराम को देते हुए आगे चलने को कहा और स्वयं खेतों की ओर चले गये। जब कीनाराम उनकी सामग्री लेकर आगे बढ़े तो बाबा शिवाराम उनको झाड़ियों की ओट से देखते रहे, और जो उन्होंने देखा उससे उनको बहुत आश्चर्य हुआ। उन्होंने देखा कि कीनाराम के नदी तट पर पहुँचने के पहले ही नदी का जल दौड़कर आगे आया और उनके चरण छूकर पुन: अपने मार्ग पर बहने लगा। किसी संत के चरण छूना भारत में आदर-सूचक माना जाता है। उस समय बाबा शिवाराम को निश्चय हो गया कि कीनाराम दीक्षा के लिये बिल्कुल उपयुक्त पात्र थे। संत शिवाराम ने बालक कीनाराम को नदी तट पर, भागीरथी को इस दिव्य क्षण का साक्षी मानकर, दीक्षा दी (लाल 1973, 66)।

बालक कीनाराम अपने गुरु की सेवा पूर्ववत करते रहे, किंतु यह क्रिया बहुत अधिक दिनों तक नहीं चल पायी। परम्परा के अनुसार कथा है कि बाबा शिवाराम की पत्नी, जिनका नाम सोना बाई था, चल बसीं। उसके बाद जब संत शिवाराम ने दुबारा विवाह करने का निश्चय किया, तो यह बात उनके शिष्य कीनाराम को बहुत अखरी, क्योंकि उन्होंने गुरुपत्नी की सेवा अपनी माता के रूप में ही की थी। इसलिये कीनाराम ने अपने गुरु से कह दिया कि यदि आप दूसरी पत्नी करेंगे तो मैं दूसरा गुरु कर लूँगा। इसपर झल्लाकर उनके गुरु ने कह दिया कि उनकी जो इच्छा हो वैसा करें। कीनाराम ने इसे संसार में पुन: भ्रमण करने की आज्ञा मानी और निकल

16 कीनाराम स्थल द्वारा प्रकाशित अघोराचार्य बाबा कीनाराम स्थल का संक्षिप्त परिचय, 5, और परम्परा के बाहर से कल्याण (1937, 628) के अनुसार उनका विवाह नौ वर्ष की आयु में ही हो गया था। माता-पिता द्वारा पुत्र को सांसारिकता के बंधन में बाँध देने का ऐसा प्रयास मलूकदास के जीवन में भी दृष्टिगोचर होता है। उनका भी विवाह कर दिया गया था, लेकिन संयोग से उनकी पत्नी और पुत्री, दोनों का देहांत हो गया, और वे इस दायित्व से मुक्त हो गए (ओर्सीनी 2023, 105)।

17 अकबर सिंह की पत्नी का नाम मनसा देवी और बाबा कीनाराम की पत्नी का नाम कात्यायिनी देवी होना इस परम्परा द्वारा प्रकाशित साहित्य में उपलब्ध है। देखें जीवन चित्रावली; सिंह, अघोराचार्य बाबा कीनाराम जी; और सिंह, चतुष्पदी, 121-2।

18 बाबा कीनाराम के नाम का एक अघोर से सम्बंधित गूढ़ अर्थ भी हो सकता है। संस्कृत में 'कीन' संज्ञा का अर्थ है 'माँस' (देखें मोनियर-विलियम्स, 285.1)। हालाँकि इस प्रविष्टि में इसे अंग्रेज़ी के 'एल' अक्षर से इंगित किया गया है, जिसका तात्पर्य है कि यह अर्थ केवल शब्दकोशों में ही मिलता है, प्रचलित भाषा में नहीं। यदि उनके संदर्भ में इस नाम का गूढ़ार्थ है तो यह उनके अघोर व्यक्तित्व का द्योतक है और उनके जीवन-चरित में मैथिल ब्राह्मणों को मछली इत्यादि खाने की प्रेरणा देने की कथाओं से मेल खाता है।

19 कुछ पुस्तकों में उनका नाम संत शिवादास पाया जाता है।

पड़े (शास्त्री 1959, 137)। इस कथा का एक रूपांतर भी प्राप्त होता है जो इस प्रसंग को इतना सरल नहीं दर्शाता। शोभनाथ लाल ने अपना शोध कार्य संत शिवाराम पर किया है। उनका मानना है कि कीनाराम ने अपने जीवन के प्रथम 65 वर्ष शिवाराम जी के साथ बिताये, और उसके बाद यदि वे वहाँ से निकले तो इसका कारण उनके गुरु की पुनर्विवाह की इच्छा न होकर कुछ और ही रहा होगा। संत शिवाराम के वंशजों के अनुसार इस बात का कोई संकेत नहीं मिलता कि शिवाराम ने कभी दूसरा विवाह किया। चूँकि बाबा कीनाराम ने पहले ही इतना लम्बा समय वैष्णव परम्परा में बिता लिया था, उनका रुझान अन्य गुरु के रूप में किसी वैष्णव संत की ओर ही होना चाहिये था, अघोर गुरु की ओर नहीं, जैसा कि भविष्य में हुआ (1973, 66-7)।

बाबा कीनाराम के जीवन में हुए परिवर्तन के विषय में लाल दो सम्भावनाएँ सामने रखते हैं। उनके अनुसार पहली सम्भावना यह है कि उन्होंने पहले से ही अपने वैष्णव गुरु को बिना बताए देवी की आराधना आरम्भ कर दी थी। जहाँ बाबा कीनाराम कारों ग्राम में अपने गुरु के साथ रहते थे वहाँ से 4-5 मील की दूरी पर आज भी देवी कष्टहरिणी भवानी का मंदिर है। बाबा कीनाराम अपने गुरु की सेवा में दिन भर उनके सोने के समय तक लगे रहते थे। जब गुरु जी सोने चले जाते थे तो वे 4-5 मील चलकर माता के मंदिर जाते थे और वहाँ पूजा किया करते थे। फिर गुरु जी के जागने के पहले वे लौटकर वापस आ जाते थे और पुन: दिन भर उनकी सेवा में लग जाते थे। लेकिन कुछ समय बाद बाबा शिवाराम को समाधि की अवस्था में इस बात का ज्ञान हो गया, किंतु उन्होंने कीनाराम से उस समय कुछ नहीं कहा। कुछ समय इस पर विचार करने के बाद उन्होंने कीनाराम को आगाह किया कि यदि भवानी उनके सामने प्रकट हों और उन्हें कुछ देना चाहें तो उस प्रसाद को वे ग्रहण न करें। ऐसा ही हुआ। जब देवी का प्राकट्य उनके समक्ष हुआ तो बाबा कीनाराम को अपने गुरु की बात याद आई, परंतु माता भवानी के आग्रह पर उनके पास प्रसाद ग्रहण करने के अतिरिक्त और कोई विकल्प न था। उस प्रसाद को ग्रहण करने के बाद उनके मन की शांति में परिवर्तन आ गया। संत शिवाराम को इस बात का भी ज्ञान हो गया और उन्होंने बाबा कीनाराम को अपना पथ स्वयं निर्धारित करने का आशीर्वाद देते हुए कहा कि वे जो भी मार्ग प्रशस्त करेंगे, वह उनके न रहने पर भी उनके नाम के साथ फलता-फूलता रहेगा। यदि श्री लाल द्वारा लिखित इस सम्भावना में कोई तथ्य है तो इसका अर्थ यह होगा की बाबा कीनाराम की शाक्त-साधना बहुत पहले ही आरम्भ हो चुकी थी।

बाबा कीनाराम द्वारा अपने पथ को बदलने की दूसरी सम्भावना जिसके बारे में श्री लाल ने लिखा है, वह है कि अपने गुरु के साथ इतने दिन व्यतीत करने के बाद उन्होंने उनसे तीर्थ यात्रा पर जाने की इच्छा प्रकट की। संत शिवाराम ने सहर्ष इस बात का अनुमोदन किया लेकिन उनको हिंगलाज माता के मंदिर जाने की वर्जना कर दी।[20] अपनी तीर्थयात्रा में बाबा कीनाराम हिंगलाज देवी के मंदिर भी पहुँचे और वहाँ काफ़ी समय तक साधनारत रहे। उनकी तपस्या से प्रसन्न होकर देवी ने उन्हें प्रसाद दिया जो, लाल के अनुसार, मदिरा थी। कहा जाता है कि उसी समय से वे वैष्णव मार्ग के स्थान पर शाक्त मार्ग में अधिक प्रवृत्त हो गये। इस कारण जब वे लौटकर अपने गुरु के पास आए तो उन्होंने मार्ग और गुरु बदलने के लिये संत शिवाराम से आज्ञा माँगी। संत शिवाराम ने उन्हें आज्ञा दे दी।

बाबा कीनाराम के विषय में जानकारी का अभाव होने के कारण उनका एक समग्र परिचय पाने के लिये हमारे लिये हर जानकारी की जाँच करना आवश्यक है। लाल द्वारा लिखित जानकारी उस दृष्टि से महत्व रखती है। यह सम्भव है कि बाबा शिवाराम ने कभी दूसरा विवाह नहीं किया। किंतु बाबा कीनाराम के मार्ग परिवर्तन के लिये वे जो कारण बताते हैं वे बहुत विश्वसनीय नहीं लगते। यह सम्भव है कि बाबा कीनाराम देवी की आराधना करते हों, गुप्त रूप से या नहीं इसपर चर्चा की जा सकती है, प्रश्न यह उठता है कि यदि उन्हें अपने वैष्णव गुरु में पूरी आस्था थी तो वे ऐसा करते ही क्यों? एक अन्य गुरु को, तथा सभी प्रकार की सिद्धियों को प्राप्त कर लेने के बाद भी, उनका बाद का जीवन काल तो निर्विवादित रूप से यही दर्शाता है कि वे आजीवन अपने वैष्णव गुरु के प्रति पूर्ण आस्थावान रहे। निष्कर्ष यह कि यदि बाबा कीनाराम का अपने अलग मार्ग पर जाने का कारण उनके गुरु का दूसरा विवाह नहीं था, तो हमें लाल द्वारा अनुमानित कारणों से भी अलग हटकर किसी और कारण के विषय में सोचना होगा।

इसके बाद की कथा एक चमत्कार प्रकरण है, जिसका प्रमाण स्वयं बाबा कीनाराम के शिष्य बीजाराम हैं। गुरु से आज्ञा लेकर जब वे यात्राओं का आरम्भ करते हुए नईडीह गाँव पहुँचे तो उन्होंने एक वृद्धा को फूटफूटकर

20 शोभनाथ लाल के अनुसार यह देवी महाभारत काल की वही देवी मानी जाती हैं जिनका जन्म वासुदेव और देवकी की आठवीं संतान के रूप में देवकी के भाई कंस के कारागार में हुआ था। कंस ने उन्हें कारागार में इसलिये डाला था कि एक भविष्यवाणी के अनुसार देवकी की संतान के हाथों ही उसकी मृत्यु लिखी थी। उसने देवकी के सात नवजात शिशुओं को कारागार में ही पटक कर मार डाला था। यह आठवीं बालिका पटकने के समय उसके हाथ से फिसलकर एक भयानक अट्टहास के साथ आकाश में विलीन हो गई थी (1973, 68)। हिंगलाज देवी के विषय में लाल का यह मंतव्य सर्वमान्य अवधारणा से बहुत अलग है, क्योंकि तंत्र चूड़ामणि एवं बृहन्नीलतंत्र जैसे ग्रंथों के संदर्भ से हिंगलाज शक्तिपीठ की महत्ता इस कारण है कि वहाँ देवी सती का ब्रह्मरंध्र गिरा था (देखें कल्याण 1987, 436)।
लाल की सोच है कि देवी हिंगलाज का यह मंदिर राजस्थान में माउंट आबू में है। बाबा कीनाराम के जीवन में हिंगलाज देवी का बड़ा योगदान है, किंतु परम्परा के अनुसार उनके जिस मंदिर में बाबा कीनाराम गए थे वह आज के बलूचिस्तान में लास बेला क्षेत्र में पड़ता है। देवी के मुस्लिम भक्त उन्हें बीबी नानी के नाम से पुकारते हैं।

रोते देखा।[21] जब उन्होंने इस विलाप का कारण पूछा तो वृद्धा ने बताया कि उसके युवा बेटे पर ज़मींदार का पोत चढ़ गया था। बकाया न चुका पाने के कारण ज़मींदार ने उसे कड़कड़ाती धूप में बाँध रखा था और पैसा वसूलने के लिये यातना दे रहा था। बाबा कीनाराम ने मानवता के नाम पर ज़मींदार से उस लड़के को छोड़ देने की प्रार्थना की। ज़मींदार ने उन्हें अपनी भिक्षा लेने और फिर चलते बनने को कह दिया। बिना पैसा वसूले वह उस लड़के को छोड़ने के लिये बिल्कुल तैयार न था। इसपर बाबा कीनाराम ने ज़मींदार से कहा कि जहाँ वह लड़का बँधा था वहाँ की ज़मीन खोदकर अपना पूरा पैसा ले ले। ज़मींदार ने भी खेल-खेल में वहाँ खुदाई करवाई। थोड़ा सा ही खोदने पर उसको पैसों का ढेर मिल गया जो, जितना उस लड़के का बकाया था, उससे भी अधिक था। इसपर उसको ज्ञान हुआ कि बाबा कीनाराम कोई आम भिक्षुक नहीं थे, और वह उनके चरणों में गिर पड़ा। बाबा कीनाराम ने विजय नाम के उस लड़के को छुड़ाकर उसकी माता को देते हुए उसे घर ले जाने के लिये कहा। उस वृद्धा की भी आँखें खुलीं कि वह एक सच्चे संत के सान्निध्य में थी, इसलिये वह अपने लड़के के साथ चले जाने को तैयार नहीं हुई। उसने कहा कि चूँकि बाबा कीनाराम ने उसके लड़के की जान बचाई थी, अब उसका जीवन उनको समर्पित हुआ, इसलिये उन्हें ही उसे अपने साथ ले जाना चाहिये। बाबा कीनाराम ने उसको ऐसा करने से बहुत मना किया लेकिन वह तो अपने पुत्र के भविष्य के विषय में निर्णय ले चुकी थी। कोई चारा न देखकर उन्हें अंतत: उस लड़के को अपनी यात्रा में साथ ले लेना पड़ा। बाद में उन्होंने विजय का नामकरण बीजाराम किया। यह बीजाराम आगे चलकर बाबा कीनाराम के उत्तराधिकारी और स्वयं एक अवधूत सिद्ध हुए। कई पुस्तकें यह बताने के लिये कि बाबा कीनाराम जाति के आधार पर किसी से भेद-भाव नहीं बरतते थे, इंगित करती हैं कि बीजाराम 'कलवार' जाति के थे, जो जाति-क्रम में एक नीची जाति मानी जाती है। ऐसा अभेद-व्यवहार अघोर और संतमत, दोनों का ही विशिष्ट चरित्र है।[22]

बीजाराम के साथ बाबा कीनाराम जूनागढ़ आए। यहाँ गिरनार पर्वत बहुत तरह के मतावलम्बियों के लिये प्राचीन काल से ही एक जागृत स्थल रहा है। जैन, दत्तात्रेय, गोरखनाथ, और शाक्त परम्परा के साधक और अनुयायी, सभी के अपने पवित्र स्थान यहाँ बने हुए हैं। इस पर्वतमाला में पाँच शिखर हैं जिनमें दत्तात्रेय शिखर सबसे ऊँचा है, और इस शिखर तक पहुँचने के लिये 10,000 सीढ़ियाँ चढ़नी पड़ती हैं।[23] बाबा कीनाराम ने युवक बीजाराम को पर्वत के नीचे ही छोड़ दिया और स्वयं साधना हेतु ऊपर चढ़े (शास्त्री 1959, 138; चतुर्वेदी 1973, 101)। वहाँ भी उन्होंने लम्बे समय तक साधना की, जिसके फलस्वरुप उनको स्वयं गुरु दत्तात्रेय के दर्शन हुए। इस भेंट से उनका जीवन पूरी तरह से बदल गया। इस भेंट का वर्णन चित्रावली (तिथि अज्ञात, 10, चित्र 13) में इस प्रकार दिया हुआ है। बाबा कीनाराम ने एक साधु को अपने कमण्डल और मांस का एक बड़ा टुकड़ा लिये हुए अघोर शिला पर बैठे देखा। अघोर शिला गिरनार के पाँच शिखरों में से एक है। कहा जाता है कि ये साधु और कोई नहीं, स्वयं गुरु दत्तात्रेय थे जिन्होंने बाबा कीनाराम को देखकर, मांस का एक टुकड़ा दाँत से काटकर, उनकी ओर फेंका।[24] सहज प्रेरणा से बाबा कीनाराम ने उसे प्रसाद मानकर ग्रहण किया और अकस्मात ही उनको दूर-दृष्टि की प्राप्ति हो गई। गुरु दत्तात्रेय ने उन्हें मानवता के कल्याण के लिये सक्रिय होने का निर्देश दिया।

बाबा कीनाराम ने विवेकसार में लिखा है कि गुरु दत्तात्रेय उन्हें जग के त्रास से मुक्त करने के लिये मिले थे, और यह अवधूत मत जिसका प्रतिपादन वे कर रहे हैं, उन्हीं दत्तात्रेय द्वारा पाया हुआ ज्ञान है। आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने 1951 में लिखा था कि बाबा कीनाराम का गुरु दत्तात्रेय से मिलन प्रतीकात्मक रूप में ही लिया जा सकता है क्योंकि दत्तात्रेय तो पुराणों में अत्रि मुनि के पुत्र के रूप में वर्णित हैं। वे ही अवधूत वेष में भ्रमण किया करते थे। आचार्य चतुर्वेदी के अनुसार अघोर परम्परा का गुरु दत्तात्रेय से कोई सशक्त सम्बंध नहीं दिखता। किंतु यह सत्य है कि अवधूत मत का स्रोत दत्तात्रेय को ही माना जाता है, और विवेकसार में बाबा कीनाराम ने स्पष्ट लिखा है कि वे अवधूत मत का प्रतिपादन कर रहे हैं। शास्त्री ने एक पंक्ति में लिखा है कि

21 इस गाँव का नाम नायकडीह (चतुर्वेदी, उत्तरी भारत की संत परम्परा, 691) और नैगडीह (रामलाल 1957, 756; शास्त्री 1959, 138) भी लिखा मिलता है।

22 गुप्ता (1993, 189) बीजाराम और रामजियावनराम (जिनकी चर्चा हम कबीरदास और बाबा कीनाराम के संत चरित में चमत्कारों के संदर्भ में कर आए हैं) की कथाओं का विश्लेषण पवित्रता-अपवित्रता के आदान-प्रदान के दृष्टिकोण से करते हुए लिखती हैं कि बीजाराम को अपने साथ लेने में कीनाराम को अपवित्रता का स्पर्श नहीं हुआ क्योंकि ज़मींदार को पैसे देकर उन्होंने बीजाराम को ख़रीदा था। उनके अनुसार 'बीजा' शब्द का अर्थ 'बिक्री का प्रमाण' होता है, हालाँकि सामान्य हिंदी शब्दकोशों में इस शब्द का यह अर्थ नहीं मिलता। वह लिखती हैं कि रामजियावनराम को साथ लेने में अवश्य उन्हें अपवित्रता लगी, क्योंकि उन्होंने एक शव को जीवित किया, और मृत्यु हिंदुओं के लिये अपवित्रता का बहुत बड़ा कारण है, लेकिन जिसे औघड़ लोग पचा लेते हैं।

23 भारतीय प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी जी ने 2020 में यहाँ एक रज्जुपथ का उद्घाटन किया जो तीर्थयात्रियों को दस मिनट में 850 मीटर की ऊँचाई पर बने अम्बा देवी के मंदिर तक ले जाता है। (https://en.wikipedia.org/wiki/Girnar)।

24 मराठी भाषा में लिखी पुस्तक (जोशी, श्री दत्तात्रेय ज्ञान कोश, 280-1) में यह कथा कुछ भिन्न रूप में बतायी गई है। उनके अनुसार गुरु दत्तात्रेय एक मृगचर्म पहने जटाधारी महात्मा के रूप में प्रकट हुए और उन्होंने खाने के लिये बाबा कीनाराम को कुछ कंद-मूल दिये। उनकी पुस्तक में यह स्पष्ट लिखा है कि गुरु दत्तात्रेय ने बाबा कीनाराम को वहाँ दीक्षा दी। वे लिखते हैं कि गुरु दत्तात्रेय ने बाबा कीनाराम के कान में अघोर मंत्र को कहा, अपना वरद-हस्त उनके शीर्ष पर रखा, और इससे बाबा कीनाराम के शरीर में एक शक्तिपात हुआ। दूसरे दिन प्रात: गुरु दत्तात्रेय ने बाबा कीनाराम के साथ गिरनार पर्वत की प्रदक्षिणा की और फिर उन्हें पहले हिमालय, और फिर काशी जाने का निर्देश दिया।

बाबा कीनाराम जूना अखाड़े के थे (1959, 140)। जूना अखाड़े के इष्टदेव दत्तात्रेय ही माने जाते हैं (गुप्ता 1993, 61; कृष्ण 2020)। यदि बाबा कीनाराम वास्तव में जूना अखाड़े में रहे थे तो दत्तात्रेय के प्रति उनकी निष्ठा स्वाभाविक है। गुप्ता ने नाथ एवं बौद्ध सिद्धों की परम्परा को ही परवर्ती संतमत एवं सरभंग सम्प्रदायों के लिये उर्वर भूमि तैयार करने वाली परम्पराएँ मानते हुए यह भी लिखा है कि महाराष्ट्र और गुजरात में दत्तात्रेय नाथ परम्परा के एक महत्त्वपूर्ण इष्टदेव हैं, विशेषकर उनके लिये जो अवधूत पद तक पहुँचना चाहते हैं (1993, 53, 83)। गोरखनाथ का कहा जानेवाला, सम्भवत: तेरहवीं शताब्दी के बाद के एक ग्रंथ सिद्धसिद्धांतपद्धति में भी, एक अध्याय अवधूत की प्रकृति और चरित्र के विषय में है, और हम आगे देखेंगे कि उसमें प्रतिपादित सिद्धांत विवेकसार से मेल खाता है। इस प्रकार परम्परा, ग्रंथ और सिद्धांत, सब को देखते हुए अवधूत मत को, पूर्ववर्ती काल में प्रचलित होते हुए भी, बाबा कीनाराम की अघोर परम्परा से भिन्न नहीं कहा जा सकता।

बाबा कीनाराम की गिरनार पर्वत पर साधना फलवती हुई थी। वे पर्वत से उतर कर जूनागढ़ आए और बीजाराम को साथ लेकर हिमालय में उत्ताराखण्ड की ओर निकल गये। कहा जाता है कि वहाँ उन्होंने काफ़ी लम्बे समय तक साधना की। हमें यह तो ज्ञात नहीं कि उन दिनों में हिमालय में बाबा कीनाराम कहाँ गए, लेकिन अघोर परम्परा द्वारा प्रकाशित साहित्य से बाहर की कथाओं से उनके वहाँ होने की जनश्रुति को बल मिलता है। मथुरा में गायत्री तीर्थ के प्रणेता श्रीराम शर्मा आचार्य ने इस विषय में अपने अनुभव का उल्लेख किया है। वे हिमालय के उत्तुंग शिखरों में एक योगी के साथ भ्रमण कर रहे थे, जिसको वे 'वीरभद्र' नाम से पुकारते थे। उन्होंने अपनी यात्रा कलाप गाँव से शुरु की थी जो गंगा के स्रोत गोमुख के ऊपर तपोवन नाम के स्थान से भी कुछ आगे पड़ता है। गोमुख से ही भागीरथी नदी प्रवाहित होती हैं जो बाद में गंगा बन जाती हैं। जब वे गौरीशंकर पर्वत के निकट आए तो उन्होंने बर्फ़ की बनी एक गुफा देखी। हम उनके उस अनुभव को यहाँ उद्धृत कर रहे हैं –

> "एक स्थान पर बर्फ की बनी हुई गुफा दिखाई दी। उसमें से हर-हर महादेव की ध्वनि आ रही थी। यह ध्वनि जप साधना में लगे किसी साधक के मुँह से निकली हुई आवाज नहीं थी। लग रहा था जैसे कोई स्नान कर रहा हो। आचार्यश्री ने विस्मित होते हुए कहा, 'इस गुफा में भी कोई झरना है क्या? लगता है कोई तपस्वी स्नान कर रहा हो।'
>
> "उत्तर मिला, 'नहीं। कोई तपस्वी नहीं बल्कि तपोनिष्ठ विभूति है बाबा कीनाराम। प्रत्यक्ष जगत से उपराम होने के बाद इसी सिद्ध क्षेत्र में रमण कर रहे हैं।'
>
> "बाबा कीनाराम के बारे में आचार्यश्री ने अच्छी तरह पढ़ा हुआ था। इस संत ने औघड़ सम्प्रदाय का प्रवर्तन भले ही न किया हो लेकिन अपनी परम्परा में उनकी ख्याति सबसे ज्यादा है। जन्म उनका लगभग चार सौ साल पहले हुआ था। तंत्र और योग मार्ग के सिद्ध साधकों में लगभग प्रत्येक ने उनसे कभी न कभी मार्गदर्शन पाया था। चार सौ वर्ष पूर्व उनका जन्म और जीवन भी असाधारण ही था। औघड़पन उनमें बचपन से ही था और मर्यादा पुरुषोत्तम राम के प्रति भक्ति भी।" (पण्ड्या और ज्योतिर्मय 2013, 334)।[25]

हालाँकि यह वृत्तांत भी स्थूल जगत से इतर का प्रतीत होता है, हम इसे यहाँ दे रहे हैं क्योंकि बाबा कीनाराम की परम्परा में यह कहीं लिखित रूप में नहीं मिलता। हिमालय में लम्बे अरसे तक साधना करने के बाद कहा जाता है कि बाबा कीनाराम काशी लौट आए जहाँ गंगा किनारे केदारनाथ घाट के पास हरिश्चंद्रघाट के श्मशान में उनकी भेंट बाबा कालूराम से हुई (शास्त्री 1959, 138; चतुर्वेदी 1972, 692; चतुर्वेदी 1973, 102; सिंह 1999, 39)। यह घटना सन् 1697 में घटी उल्लिखित है (विक्रम संवत 1754, शास्त्री 1959, 139)। हम पढ़ ही चुके हैं कि बाबा कालूराम ने किस तरह उनकी परीक्षाएँ लीं – मछली खाने के लिए माँगकर, एक युवक के बहते हुए मुर्दे को जिलवाकर इत्यादि। परीक्षाओं से संतुष्ट होकर बाबा कालूराम उन्हें क्रिं-कुण्ड ले आए और इस स्थान की महत्ता बताने के बाद उन्होंने बाबा कीनाराम को दीक्षा दी (चतुर्वेदी 1973, 103; शास्त्री 1959, 139)।[26]

बाबा कालूराम से मिलने के करीब दस दिन बाद, उन्हीं के आग्रह पर, बाबा कीनाराम ने उनके भक्त राघवेंद्र सिंह को बुलाया और पूछा कि क्या वे क्रिं-कुण्ड के लिये उस स्थल का दान करेंगे? राघवेंद्र सिंह ने सहर्ष इस बात को स्वीकार कर लिया और अपने पास की भूमि से दस बीघा ज़मीन और माता हिंगलाज का यंत्र उन्हें

25 बाबा कीनाराम की परम्परा में यह विश्वास है कि काशी में समाधि ले लेने के बाद भी वे जगन्नाथपुरी, गंगासागर, गिरनार और अन्य तीर्थ-स्थलों में आज भी भक्तों को दर्शन देते हैं (चतुर्वेदी 1973, 89)।

26 कहा जाता है कि गुरु दत्तात्रेय स्वयं बाबा कालूराम के रूप में बाबा कीनाराम के सामने उनको पुन: दीक्षित करने के लिये प्रकट हुए थे (जोशी, श्री दत्तात्रेय ज्ञान कोश, 281)। दीक्षा देने के बाद वे अदृश्य हो गए थे (शास्त्री, संतमत का सरभंग सम्प्रदाय, 139)। किंतु सिंह (अघोराचार्य बाबा कीनाराम जी, 107) ने लिखा है कि दीक्षा के बाद बाबा कालूराम बाबा कीनाराम के साथ एक साल तक क्रिं-कुण्ड स्थल में रहे, और उसके बाद उन्होंने अपने भौतिक शरीर का त्याग किया। जोशी का मत है कि बाबा कीनाराम क्रिं-कुण्ड में लगे एक इमली के पेड़ के नीचे रहने लगे थे। कहा जाता है कि बाबा कीनाराम केवल 19 वर्ष की आयु के थे जब उन्हें क्रिं-कुण्ड की गद्दी पर आसीन किया गया (सु. मिश्र 2004, 40; सिंह 2006, 120)। किंतु यह बात जँचती नहीं। ऐसा होने पर बाबा कालूराम से मिलने की जो तिथि विद्वानों ने लिखी है, उससे पहले ही बाबा कीनाराम को यह गद्दी प्राप्त हो जाती है!

दान कर दिया। बाबा कीनाराम ने इस उदारता के लिये उनकी प्रशंसा की और कुण्ड की दक्षिण दिशा में अपने शिष्यों के साथ एक कुटी की स्थापना की। एक साल के बाद जब बाबा कालूराम ने समाधि ले ली, बाबा कीनाराम ने क्रिं-कुण्ड को सम्हालने का जिम्मा रामजियावनराम को सौंपा, और बीजाराम को लेकर पुन: अपनी यात्राओं पर निकल पड़े (सिंह 1999, 104-7)। अब, अपने प्रथम गुरु की स्मृति में उहोंने चार वैष्णव मठों की स्थापना की। इनमें से तीन वर्तमान उत्तर प्रदेश राज्य में मारुफ़पुर, नईडीह, और परानापुर हैं। चौथा वैष्णव पीठ महुआर में है जो वर्तमान बिहार राज्य में पड़ता है। अपने अघोर गुरु बाबा कालूराम की स्मृति में उन्होंने चार अघोर मठों की स्थापना की, जिनमें प्रथम तो क्रिं-कुण्ड ही है। दूसरा उनके अपने गाँव रामगढ़ में है। तीसरा गाज़ीपुर डिस्ट्रिक्ट के देवल में है, और चौथा जौनपुर डिस्ट्रिक्ट के हरिहरपुर में है (चतुर्वेदी 1973, 103) **[चित्र 3]**।

बाबा कीनाराम के जीवन-चरित में कई ऐसी रोचक घटनाएँ हैं जहाँ उनकी सामाजिक चेतना और अन्याय का विरोध करने की प्रवृत्ति साफ दिख जाती है। उदाहरण के लिये उन्होंने सूरत शहर में एक युवा ब्राह्मणी विधवा को उसके नवजात शिशु के साथ मारे जाने से बचाया था (सिंह 1999, 36-7); या कोहलीन शहर के निवासियों की कथा जिन्हें पिंडारियों ने ध्वस्त कर दिया, किंतु जो बाबा कीनाराम की सहायता से पुन: सबल हुए (सिंह 1999, 46-7)। अन्य बहुत सी चमत्कार कथाएँ हैं जो अन्यत्र उपलब्ध होने के कारण हम यहाँ न दुहराकर केवल उन में से कुछ का नाम गिना देते हैं – संत तुलसीदास के संदर्भ में कम से कम दो कथाएँ हैं जहाँ एक कथा में वे तुलसीदास को अपने अघोर आश्रम में श्रीराम, सीता, लक्ष्मण और हनुमान का दर्शन कराकर बंधनमुक्त साधु होने का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं (काटवे 1949, 125)। दूसरा, एक महिला का तुलसीदास से संतान प्राप्ति का वर माँगने पर निराश हो जाने पर बाबा कीनाराम उस महिला को चार पुत्रों की प्राप्ति करा देते हैं और इस उक्ति को चरितार्थ करते हैं, "जो न करे राम, सो करे कीनाराम" (जोशी 1974, 281)।[27] अपने ही गुरुभाई गोवर्धनदास के भण्डारे में न आमंत्रित किये जाने पर वे शाकाहारी भोजन को सामिष बना देते हैं, और पुन: गोवर्धनदास द्वारा भी अपना चमत्कार दिखाने पर उन्हें लोटादास नाम देते हैं (मुखर्जी 2008, 237)। मैथिल ब्राह्मणों के कहने पर एक मृत हाथी को जीवित कर वे उन्हें मछली खाने की सलाह देते हैं (सिंह 1999, 57-8)। अपनी युवावस्था में जब बाबा कीनाराम पहली बार अपनी लम्बी यात्रा से लौटे तो उन्होंने एक कुआँ खुदवाने का काम शुरू करवाया। संयोग से उसकी दीवार बनाने के लिये मँगाई गई ईंटें पर्याप्त नहीं थीं। इस पर बाबा कीनाराम ने काम करने वालों से गोहरे इकट्ठे कर के उसी से दीवार को जोड़ देने के लिये कहा। वैसा ही किया गया। वह कुआँ आज भी विद्यमान हैं और कहा जाता है कि उसमें बहुत सी बीमारियों को ठीक कर देने की क्षमता है (चतुर्वेदी 1973, 88; सिंह 1999, 101-2) **[चित्र 4]**।

बाबा कीनाराम स्थल में विद्यमान क्रिं-कुण्ड को स्वास्थ्यवर्धक शक्तियाँ मिलने की भी एक कथा है। एक बार जब बाबा कीनाराम वर्षा ऋतु क्रिं-कुण्ड में ही बिता रहे थे, एक महिला सुखण्डी रोग से पीड़ित अपने बच्चे को लेकर पहुँची। उसने बाबा से मदद की याचना की। उनकी करुणा उमड़ पड़ी। उन्होंने चावल के कुछ दाने लेकर उन्हें अभिमंत्रित किया और क्रिं-कुण्ड के पानी में फेंक दिया। फिर उन्होंने महिला को अपने बच्चे को कुण्ड के जल में नहलाने को कहा, कि इससे बच्चा ठीक हो जाएगा। जब तक काशी में गंगा बहती रहेगी, यह कुण्ड लोगों की सहायता करता रहेगा, नि:संतान स्त्रियों को गर्भधारण तक में मदद करेगा। बाबा कीनाराम के इस आशीर्वाद से सैकड़ों बच्चे हर साल लाभ पाते रहे हैं। वे आकर एक विशेष विधि से कुण्ड में स्नान करते हैं, और फिर वे बाबा कीनाराम की सामाधि पर मछली और चावल का भोग लगाते हैं (सिंह 1999, 108)। बाबा कीनाराम के चमत्कारिक जीवन के कुछ प्रकरणों का उल्लेख कर अब हम तीन कथाओं को हल्के विस्तार से देखते हैं, उनकी सामाजिक-आध्यात्मिक परिकल्पना को समझने के लिये।

2.1.1 योगिनी के साथ श्मशान क्रिया

गुप्ता ने अपने दृष्टिकोण से ब्राह्मण तंत्र और नाथ तंत्र (जिसमें अघोर-तंत्र भी सम्मिलित है) का अंतर बताया है। उन्होंने समझाने का प्रयत्न किया है कि ब्राह्मण तंत्र सीमाबद्ध है, जब कि नाथ तंत्र की परिसीमा खुली हुई है (1993, 70)। विद्वज्जन इस विषय पर चर्चा कर सकते हैं। हम यहाँ एक कथा प्रस्तुत करते हैं जो कम से कम बाबा कीनाराम के जीवन से जुड़ी साधना परिकल्पना का एक दृश्य दिखाता है।

वर्षा ऋतु बिताने के लिये मुंगेर शहर के पास एक श्मशान के निकट बाबा कीनाराम ने अपनी कुटी लगाई हुई थी। मध्यरात्रि के समय उनकी कुटी और श्मशान दोनों आलोक से जगमगा उठे जब एक मंगल पीतवस्त्रधारी, सुंदर केशों वाली योगिनी खड़ाऊँ पहने हुए आकाश से वहाँ उतरी। उसने बाबा को प्रणाम कर सरलता

27 तुलसीदास और बाबा कीनाराम के समकालीन होने की कथाएँ मराठी पुस्तकों में भी पाई जा सकती हैं। देखें जोशी, श्री दत्तात्रेय ज्ञान कोश, 279-81, और शास्त्री, दत्त उपासना कल्पद्रुम, 452-8।

से 'सहज साधना' करने की अपनी इच्छा को प्रकट किया।[28] महाराज श्री कीनाराम ने योगिनी को देखा, उसका परिचय पूछा और यह भी कि वह कहाँ से आई है? योगिनी ने उत्तर दिया, "मैं गिरनार की काली गुफा में निवास करती हूँ। मुझे यह प्रेरणा हुई और आपकी ओर आकर्षण हुआ। मैं आकाश-मार्ग से उड़ते हुए आपकी कुटी तक पहुँची। मेरी पूर्णता में जो कमी बाकी है उसे आप अपनी क्रियाओं से पूर्ण करें।"

वहाँ मैदान में एक शव पड़ा हुआ था जिसे लोग भारी वर्षा होने के कारण छोड़ कर चले गए थे। धरती में चार खूँटे पर्याप्त स्थान देकर गाड़े गए और उनसे उस शव के हाथ और पैरों को मूँज की रस्सियों से बाँध दिया गया। फिर शव को एक लाल कपड़े से ढँक कर उसका मुख खोल दिया गया। योगिनी और महाराज कीनाराम भग-लिंग आसनस्थ हो उस शव पर बैठे। महाराज कीनाराम मंत्रोच्चार करते रहे और योगिनी अभिमंत्रित धान के लावे की आहुतियाँ शव के मुख में डालती रही। यह क्रिया कुछ ही देर चली होगी कि एक प्रचण्ड ध्वनि के साथ धरती फटी और उस गह्वर से श्मशान के देवता, सदाशिव, अंक में पार्वती को लिये, नंदी पर बैठे, प्रकट हुए।[29] बहुत ही मधुर वाणी में वे बोले – "सफल हो सहज साधना। दीर्घायु हो। कपाल खप्पर में सहज रुप से प्रवेश के लिये आपका मार्ग प्रशस्त है। स्मरण रखें, मैं उपयुक्त समय पर प्रकट होता रहूँगा।"[30]

योगिनी और महाराज कीनाराम ने शव से उतरकर उन्हें प्रणाम किया। उनके देखते ही देखते नंदी और उन पर आरूढ़ महाकाल आकाश में विलीन हो गए। एक स्पंदन सा हुआ और वह शव पत्थर में बदल गया। वह पत्थर बना शव कभी-कभी गंगा के मध्य में दिख जाता है। यदि कोई साधक उस पर बैठ जाता है, या उसके सम्पर्क में आ जाता है, तो उसे वाक्-सिद्धि, अदृश्य होने की सिद्धि, और आकाशगमन करने की सिद्धि प्राप्त हो जाती है।

योगिनी संतुष्ट हुई। उसने महराज कीनाराम को प्रणाम कर विदा ली और पश्चिम दिशा की ओर निकल गई (सिंह 1999, 81-3)।

यहाँ तक तो हमने सकारात्मक, सुखांत कहानियाँ पढ़ीं। लेकिन सभी कहानियाँ सुखांत तो होती नहीं, अपितु उनका सुखविहीन अंत ही एक प्रकार का जीवन से सीखने वाला पाठ होता है। अब दो कहानियाँ ऐसी भी जो भगवान् शिव द्वारा भस्मासुर को दिये गए वर की याद दिलाती हैं, जहाँ वर या आशीर्वाद का परिणाम हमेशा अच्छा नहीं होता।[31] इनमें से पहली कहानी श्मशान साधना के बारे में है। यह कहानी दर्शाती है क्यों तंत्र साधनाओं को इतना गुप्त रखा जाता है, क्यों तंत्र साधनाओं को वीर-भाव वाले साधकों के लिये उपयुक्त माना जाता है, क्यों गुरु बिना दीक्षा दिये शिष्य को साधना-पथ पर नहीं लगाते हैं, और कैसे, साधना की अपूर्णता पर, गुरु को उसका परिणाम झेलना पड़ता है।

2.1.2 भैरव सिद्धि की साधना

यह उस समय की कथा है जब बाबा कीनाराम कलकत्ते के नीमतल्ला श्मशान में ठहरे हुए थे। हिरण मुखर्जी नाम का एक युवक रोज़ श्मशान में आकर उनकी सेवा करने लगा। कुछ समय बाद जब बाबा वहाँ से गंगासागर के लिये चलने लगे तो हिरण मुखर्जी ने उनसे भैरव साधना का मंत्र माँगा। कीनाराम तो मनमौजी थे, दे दिये। मंत्र बताते समय उन्होंने हिरण को चेताया कि उसे पूर्णतया निर्भीक होकर यह साधना करनी होगी, चाहे कुछ भी हो जाय, उसे निर्धारित जप संख्या पूरी किये बिना अपने आसन से नहीं उठना है। हिरण मुखर्जी ने बाबा कीनाराम को अपने साहस के प्रति आश्वस्त किया, और कीनाराम बाबा गंगासागर की ओर निकल गए।

संध्या वेला में हिरण ने श्मशान में साधना आरम्भ की। उसे 3000 बार मंत्र का जप करना था। दत्तचित्त होकर वह यह कार्य कर रहा था कि 1000 जप पूरा होते-होते उसने देखा कि एक नट अपनी नटी के साथ एक काले भैंसे पर सवार वहाँ आया। उसके साथ में दो मुर्गे भी थे। भैंसे से उतरकर उसने उसे पीपल के पेड़ से बाँध दिया और लकड़ी जोड़कर चूल्हा बनाया। उस पर एक बड़ा सा कठौत चढ़ाकर उसने खाना बनाने के लिये उन दोनों मुर्गों को मारकर, उनके छोटे-छोटे टुकड़े कर के उस कठौत में डाल दिया। लेकिन उतना माँस नट और नटी के लिये पर्याप्त नहीं था। उसने इधर-उधर देखा। और कुछ न दिखा तो उसने अपने भैंसे को ही काटकर, टुकड़े कर के, उस कठौत में डाल दिया। उसको बड़ा आश्चर्य हुआ जब वह कठौत नहीं भरा। उसने

28 हिंदू और बौद्ध साहित्य में सहज शब्द के कई अर्थ मिल जाते हैं। यहाँ हम कैलेवेयर्ट 2015 से कुछ उद्धरण दे रहे हैं – 1. वि. आंतरिक, प्राकृतिक, सरल। 2. क्रि.वि. आसानी से, स्वत:। 3. प्राकृतिक रुप से। 4. एक रहस्यमय, अतींद्रिय अलौकिक अवस्था ("जो तांत्रिक साधना का ध्येय है..., सभी 'संकल्पों-विकल्पों से परे' की अवस्था, आत्म-अनुभव, मुक्ति... तांत्रिक परिकल्पना में 'सहज' का महासुख की स्थिति से साम्य है, जो 'पूर्ण आनंद' है। किंतु, तंत्र की सभी धाराओं में आनंद तो उस 'पूर्णता' की प्रकृति है... वह पूर्णता हमें तब प्राप्त होती है जब हम अपने आत्म में ही सम्पूर्ण आनंद का अनुभव करते हैं...")

29 तंत्र में शिव महाकाल माने जाते हैं, जो श्मशान के देवता हैं। पार्वती उनकी अर्धांगिनी, और नंदी उनके वाहन हैं।

30 बौद्ध तांत्रिक परम्परा में द्विवेदी चार प्रकार के आनंद गिनाते हैं – प्रथमानंद, परमानंद, विरमानंद और सहजानंद, जिसमें अंतिम आनंद को सुखराज भी कहते हैं (नाथ सम्प्रदाय, 86)।

31 भस्मासुर की कथा पढ़ने के लिये देखें कानेरे, 1998, 376-8.

नटी से कहा कि शायद कोई श्मशान देवता है जो कोई क्रिया कर रहा है, माँस कठौत में पूरा नहीं पड़ रहा है। अच्छा, किसी और प्राणी को खोजते हैं। उसने बड़ा सा चाकू लिया और हिरण मुखर्जी की ओर बढ़ा। हिरण के तो होश फ़ाख़्ता हो गये। उसने माला को एक तरफ़ फेंका और आसन छोड़कर ऐसे भागा जैसे हवा से होड़ कर रहा हो। कुछ दूर जाकर उसने पीछे मुड़कर देखा तो वह नट चाकू लिये अब भी उसके पीछे आ रहा था। हिरण जहाँ जाता था उसको वह नट पीछे-पीछे आता दिखाई देता था। अब वह न रात को सो पाता था न दिन को चैन से रह पाता था। पागलपन की इस स्थिति में उसने छः महीनों में प्राण त्याग दिये। उसके सगे सम्बंधियों ने उसका दाह-संस्कार न कर उसके शरीर को जल में बहा दिया।

कुछ समय बाद बाबा कीनाराम को इस घटना का पता चला। उन्होंने हिरण मुखर्जी की सुध लेकर उसका शरीर खोजा, जिसे गिद्ध-कौवे खा गए थे और जिसका सिर अलग हो गया था। उन्होंने हिरण की खोपड़ी लेकर उसका कपाल-पात्र बनाया, और उसी से भैरवी चक्र की पूजा करने लगे। भैरव-मंत्र की असफलता का जो अभिशाप हिरण को लग गया था, उससे वह मुक्त हो गया। इस प्रकार की साधना असफल होने से उसका दोष गुरु पर ही आता है (सिंह 1999, 74-6)।[32]

2.1.3 ख़ज़ाने की चाभी का दुरुपयोग

एक बार बाबा कीनाराम कानपुर जिले में धवड़ी गाँव में यमुना नदी के किनारे एक झोपड़ी में रह रहे थे। वहाँ रघु नाम का एक व्यक्ति हमेशा उनकी सेवा में लगा रहता था। वह उनकी झोपड़ी साफ़ करता, कपड़े धोता, पूजा के निमित्त फूल लाता। एक दिन जब बाबा कीनाराम उसकी सेवा से बहुत प्रसन्न हुए तो उन्होंने उससे पूछा, "तुम्हें क्या चाहिये रघु?"

रघु ने बताया कि वह एक बहुत ग़रीब आदमी था, और उसे 'ख़ज़ाने की चाभी' की ज़रूरत थी। इस-पर बाबा कीनाराम ने अपनी धूनी में से करीब छः इंच लम्बी एक लकड़ी निकाली और उसे रघु को दे दिया। उससे कहा कि वह लकड़ी को ज़मीन में लगाकर जो चाहे माँग सकता है। यह कहकर बाबा कीनाराम उस स्थान को छोड़कर चले गए।

रघु ने अपनी 'चाभी' का तुरत परीक्षण किया। उसने बाहर आकर लकड़ी को धरती पर लगाया और उससे खाने को माँगा। तत्काल ही धरती फट गई और उसमें से भाँति-भाँति के स्वादिष्ट व्यंजन ऊपर आ गए। रघु ने छक कर खाया। इस 'ख़ज़ाने की चाभी' के मिल जाने के बाद रघु का जीवन पूरी तरह से बदल गया। अब वह काम करने के बदले अपना सारा समय दोस्तों के साथ गप्प लड़ाने में बिताने लगा। उसे शराब, गाँजा और वे-श्यावृत्ति की भी लत लगते देर न लगी। शोभनी नाम की एक वेश्या से उसका विशेष सम्बंध हो गया। रघु उसके पास गया और वेश्या ने एक रात के लिये 5000 रुपयों की माँग की। देखने में रघु बहुत सुंदर नहीं था और चलने में कुछ लंगड़ाता भी था। चाभी मिलने के बाद से उसके व्यसनों ने बाबा कीनाराम की उसकी स्मृति को धूमिल कर दिया था। शोभनी कानपुर शहर में रहती थी और वे दोनों उसके घर की छत पर बैठे हुए थे। उसके संसर्ग के लिये आतुर रघु ने नशे में कुंद होकर उसके द्वारा माँगी राशि के लिये अपनी लकड़ी की चाभी को शोभनी के छत की फ़र्श पर लगा दिया। वह भूल चुका था कि बाबा कीनाराम ने उसे लकड़ी को हर बार कुछ माँगने के लिये धरती पर लगाने के लिये कहा था। अगले ही क्षण लकड़ी और मिट्टी से बना छज्जे का फ़र्श गर्जना करते हुए दो में फट गया, छत की बल्लियाँ भी टूट गईं, और वे दोनों नीचे गिर मलबे के नीचे मृत्यु को प्राप्त हुए। बाबा कीनाराम द्वारा दी गई चाभी से रघु ने स्वयं अपनी मृत्यु का द्वार खोल लिया था (सिंह 1999, 72-4)।

कहा जाता है कि अपने जीवन-काल में बाबा कीनाराम का शाहजहाँ और औरंगज़ेब, इन दो मुग़ल बाद-शाहों से सम्पर्क रहा, एक मुग़ल नवाब से जूनागढ़ में संसर्ग हुआ (जिनके बारे में हम ऊपर पढ़ चुके हैं), और दो हिंदू राजाओं – महाराज बलवंत सिंह और उनके बेटे चेत सिंह - से बनारस में सम्पर्क रहा। इनमें से शाह-जहाँ और चेतसिंह के संदर्भों को एक उड़ती निगाह से देख लेते हैं।

32 इस कथा से मिलती-जुलती कथा महाप्रभु अघोरेश्वर भगवान राम जी की पुस्तक अघोरेश्वर संवेदनशील, 92-3 में भी मिलती है। सोन और गंगा नदी के संगम पर नीलकंठ टोला के पास एक श्मशान है। वहाँ पूर्णिमा की रात्रि को मुड़िया साधु अनुष्ठान करते हुए माँस, मछली, मदिरा, काला तिल इत्यादि बहुत से द्रव्यों से आहुति दे रहा था। उस समय उसको अनुभव हुआ कि एक बड़ा भैंसा उसपर आक्रमण करने को उद्यत है, उसके द्वारा दिग्बंधित किए हुए घेरे को तोड़ डालेगा। किंतु मुड़िया साधु विकम्पित नहीं हुआ। उसने अपना अनुष्ठान जारी रखा। कुछ देर बाद उसको अनुभव हुआ कि वह भैंसा उसके नाख़ूनों से निकले प्रकाश के द्वारा मारा गया था और नदी के जल में बहा जा रहा था। इस प्रकरण में मुड़िया साधु को सिद्धि प्राप्त हुई। उसकी साधना सफल रही।

2.1.4 बादशाह शाहजहाँ और कन्धार का किला

कथा है कि कंधार की यात्रा में बाबा कीनाराम की मुलाकात शाहजहाँ से हुई, और उन्होंने उसको कंधार का किला फारस के शाह अब्बास से बिना किसी युद्ध के ही जीत लेने का आशीर्वाद दिया (सिंह 1999, 89-91)। मुलाकात के बारे में तो हम निश्चित रूप से ऐतिहासिक तौर पर नहीं कह सकते, लेकिन वास्तव में ही शाहजहाँ को यह किला अचरजपूर्ण विधि से, सन् 1638 में मिल गया। फारस के शाह अब्बास के इतिहासकार मुंशी इसकंदर बेग लिखते हैं कि सन् 1588-89 में उज़्बेक सेनाओं ने खुरासान क्षेत्र पर अधिकार कर लिया और कंधार में राज कर रहे राजकुमारों को भाग कर सन् 1592 में शहंशाह अकबर के यहाँ शरण लेनी पड़ी, जिसके कारण यह किला मुग़लों के अधीन आ गया। लेकिन तीस सालों बाद फारस के शाह अब्बास ने इसे अपने अधिकार में ले लिया (मुंशी 1930 भाग 2, 1191-7)। उन की मृत्यु के बाद राजगद्दी पर शाह सफ़ी आए, और कंधार के किले के अधिकारी अली मर्दान ख़ाँ के प्रति उनके विचार बहुत ऊँचे नहीं थे। अली मर्दान ख़ाँ ने 1638 में यह किला मुग़लों के सुपुर्द कर दिया। इस प्रकार बिना लड़े ही कंधार का किला शाहजहाँ के हाथ लग गया।

2.1.5 काशी के राजा चेतसिंह

चेतसिंह 1781 तक काशी नरेश रहे (सु. मिश्र 2004, 30)। अपने शासन के पूर्वार्ध में उन्होंने शिवाला पर अपने नाम से एक नया किला बनवाया। उस किले में उन्होंने एक शिव मंदिर की स्थापना की (गौतम 1975, 28)। बाबा कीनाराम को मंदिर के अभिषेक में आमंत्रित नहीं किया गया था, लेकिन वे फिर भी आ गए थे। जब चेतसिंह ने उन्हें बाहर निकलवाना चाहा तो उन्होंने श्राप दिया कि यह किला विधर्मियों के हाथ चला जाएगा, राजा को भागना पड़ेगा, किले में कबूतर बीट करेंगे, और वहाँ उपस्थित सभी लोग उस समय से नि:-संतान रहेंगे। राजा के कर्मचारी बख़्शी सदानंद जो वहाँ उपस्थित थे और पूरे घटनाक्रम को देख रहे थे, बाद में बाबा से मिले और जो हुआ उसके लिये क्षमायाचना की। बाबा ने उसे अभय देते हुए कहा कि जब तक उसके परिवार के लोग अपने नाम के अंत में 'आनंद' लगाते रहेंगे, उसका वंश चलता रहेगा (सिंह 1999, 93)।

चेतसिंह का राज्य ब्रिटिश राज के औपनिवेशिक अफ़सर वॉरेन हेस्टिंग्स, जो 1772 से 1785 तक बंगाल के गवर्नर जनरल रहे, के इस प्रकरण में प्रवेश के बाद अनिश्चित हो गया। ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कम्पनी ने 15 अप्रैल 1776 में एक नई राजाज्ञा पारित कर के चेतसिंह के राज्य पर अधिकार कर लिया। जुलाई 1781 की सात तारीख़ को वॉरेन हेस्टिंग्स बनारस आए। चेतसिंह ने उनके सामने अपना दुखड़ा गाया लेकिन वह व्यर्थ रहा, उनका सबके सामने अपमान किया गया (सु. मिश्र 2004, 31)। उन्होंने ब्रिटिश सेना का विरोध करने का प्रयास किया किंतु असफल रहे और किला छोड़कर भागना पड़ा। उनका किला और वह मंदिर सब वॉरेन हेस्टिंग्स के कब्ज़े में आ गये। मंदिर की पूरी अनदेखी हुई और अंतत: वह कबूतर की बीट से भर गया (गौतम 1975, 28)।[33]

चेत सिंह और बाबा कीनाराम का सम्पर्क मात्र कल्पना नहीं प्रतीत होता। जिन बख़्शी सदानंद को बाबा ने अभय दिया था उन्हीं के वंशज सम्पूर्णानंद थे जिनके नाम पर बनारस में संस्कृत विश्वविद्यालय है। उन्हीं के सुपुत्र सर्वदानंद ने 'श्री नटराज' नाम की नाटक मण्डली बनाई और शोध कर ऐतिहासिक नाटक 'चेत सिंह' का मंचन किया। इसमें भी दर्शाया जाता है कि बाबा कीनाराम ने यह श्राप दिया था, और बख़्शी सदानंद उसके साक्षी थे (सर्वदानंद 1957, 50) **[चित्र 5]**।

हमने बाबा कीनाराम के विषय में प्रचलित सभी कथाओं को यहाँ नहीं दिया है, लेकिन ये उदाहरण यह दिखाने के लिये पर्याप्त हैं कि उनकी अलौकिक प्रतिभा के बारे में लोग क्या सोचते हैं। आध्यात्मिक दृष्टि से देखें तो एक प्रकार से उनकी छवि भगवान शंकर की तरह की है, जो आसानी से प्रसन्न हो जाते हैं, पूरे दानवीर हैं, एक साधु होने के नाते बहुत निस्पृह हैं, लेकिन हमेशा करुणा से भरे रहते हैं, और क्रुद्ध होने पर प्रचण्ड हो जाते हैं। सामाजिक वर्ण-व्यवस्था के दृष्टिकोण से देखें तो वे मानव-क्षमता को परिसीमित करने वाले हर बंधन से मुक्त, अघोर परम्परा के अनुसार, और वैष्णव परम्परा से बिल्कुल उल्टे हैं, न उनको माँस खाने, मदिरा सेवन करने, गाँजा फूँकने इत्यादि में कोई समस्या है, न छोटे या बड़े वर्ग के लोगों से व्यवहार करने में, क्योंकि उनको जो कुछ भी दिखता है, वह दैवीय भाव से परिपूरित दिखता है। उनके लिये सभी पदार्थ और सभी जीव एक समान

33 इस श्राप के बाद से काशी का राजवंश गोद ले-लेकर ही चलता रहा। उस समय से कोई औघड़ साधु या भक्त काशी नरेश के यहाँ से अन्न-जल ग्रहण नहीं करता है। अघोरेश्वर महाप्रभु भगवान राम जी के समय में तत्कालीन काशी नरेश विभूतिनारायण सिंह ने उनसे श्राप-विमोचन की प्रार्थना की थी। अघोरेश्वर महाप्रभु ने उनसे कहा था कि इसका विमोचन क्रिं-कुण्ड स्थल के 11वें पीठाधीश्वर अपनी आयु 30 वर्ष पूर्ण होने के बाद करेंगे। सन् 1978 में अघोरेश्वर महाप्रभु ने बालक सिद्धार्थ गौतम राम का नौ वर्ष की आयु में क्रिं-कुण्ड स्थल के पीठाधीश्वर के रूप में अभिषेक किया। उन्हीं बाबा सिद्धार्थ गौतम राम जी ने 30 अगस्त 2000 को काशी राज-परिवार के यहाँ फल और जल ग्रहण कर परिवार के श्राप-विमोचन का कार्य पूरा किया। देखें – https://iswaqt.com/kinaram-kashi-rnaresh-shrapmukt/.

हैं क्योंकि वे न केवल उनके बाहरी आवरण के पार देखते हैं, बल्कि आवश्यकता पड़ने पर एक पदार्थ को दूसरे में बदल भी देते हैं। उनके द्वारा भक्तों या शिष्यों को दिये आशीर्वाद उनका भला तो करते हैं, लेकिन सिर्फ़ तब जब उनका दुरुपयोग न किया जाय। लेकिन एक बात है जिसको बाबा कीनाराम बहुत महत्व देते हैं, और वह है संत के जीवन में तपस्विता और सभी को साथ लेकर चलने का गुण। यही उनके जीवन का परम आदर्श है।

इसी आदर्श के परिप्रेक्ष्य में हम यह भी कह सकते हैं कि बाबा कीनाराम का अघोर-अवधूत, सिद्ध-योगी व्यक्तित्त्व सभी सीमाओं से परे होने के कारण उनको सामाजिक अन्याय का, चाहे वह किसी भी प्रकार से हो, प्रतिकार करने में असीम क्षमता प्रदान करता है। अपने ही गुरुभाई गोवर्धनदास द्वारा आमंत्रित न किये जाने पर वे चुपचाप रह सकते थे, किंतु गोवर्धनदास की सामाजिक-न्याय की अवचेतना तब कैसे जागृत होती? ब्राह्मणी युवती विधवा या कोहलीन शहर के नागरिकों की सहायता न करते, तो संत के सामाजिक दायित्व का निर्वाह किस प्रकार होता? मैथिल ब्राह्मणों को मछली खाने के लिये न कहते तो समाज में व्याप्त वर्ग-व्यवस्था का समाधान कैसे निकलता? रामगढ़ में कुआँ न बनवाते या क्रिं-कुण्ड को रोग-हरण शक्ति न देते तो संत की करुणा का उदाहरण कैसे प्रस्तुत होता? काशी, जो शिव की नगरी है, वहाँ राम-भक्त भी बसते हैं, लेकिन भक्तों द्वारा औघड़ संत को भक्ति और योग दोनों में तुलसीदास से भी श्रेष्ठ बताना ऐतिहासिक रूप से शिव की जीती-जागती कल्याणकारी प्रतिच्छाया का ही अनुमोदन है। योगिनी के साथ उनकी साधना तंत्र की सीमातीत आध्यात्मिकता का उदाहरण है। और हिरन मुखर्जी तथा रघु की कथाएँ साधु-संतों द्वारा प्रदत्त निधि का उपयोग करने के लिये आवश्यक आत्म-नियंत्रण के परिचायक हैं। शाहजहाँ और चेतसिंह से उनके सम्पर्क की कथाएँ राजसत्ता से व्यवहार करते हुए भी उन पर अंकुश रखने के उदाहरण हैं। इन सभी कथाओं में बाबा कीनाराम लोक-आकांक्षा की पूर्ति करते हुए सब को साथ लेकर चलते हुए दृष्टिगोचर होते हैं। भक्तों के लिये यही इन कथाओं से मिलने वाली प्रेरणा है।

अघोर परम्परा और बाबा कीनाराम के जीवन के विषय में गहन शोध के बाद गुप्ता (1993) एवं बैरेट (2008) दोनों ने लिखा है। गुप्ता के शोध में यह रेखांकित किया गया है कि बाबा कीनाराम की अघोर परम्परा को नाथ परम्परा के माध्यम से ही समझा जा सकता है। ऐसा इसलिये क्योंकि नाथ साहित्य में अवधूत की परिकल्पना विकसित है, वे भी अभेद को मानते हैं, जाति-पाँति में विश्वास नहीं करते, और उनकी कम से कम एक शाखा में दत्तात्रेय ही इष्ट गुरु हैं। परवर्ती कापालिक साधक जो नाथपंथ में अंतर्भुक्त हो गए थे, उनकी भी क्रियाएँ नाथपंथ में ही परिलक्षित होती हैं। बाबा कीनाराम के जीवन चरित को भी उनकी परम्परा ने जिस प्रकार प्रस्तुत किया है, वह बहुत कुछ नाथ योगियों के क्रिया-कलापों से मेल खाता है। उनकी इन बातों में तथ्य अवश्य है, किंतु यह दृष्टिकोण ऐतिहासिक रूप से अघोर परम्परा को समझने में अधिक सहायक है। नाथ और अघोर परम्पराएँ ऐतिहासिक रूप से इतनी घुली-मिली हुई हैं कि उनमें से हर एक तार को अलग-अलग कर के देखना दुष्कर कृत्य है। किंतु गुरु परम्परा पर आधारित होने के कारण वर्तमान में बाबा कीनाराम की परम्परा का जो रूप है, वह केवल नाथ परम्परा के इतिहास से स्वाभाविक रूप से प्रकट नहीं होता। उनकी परम्परा में मत्स्येंद्रनाथ-गोरखनाथ का आदर अवश्य है, किंतु गुरु के रूप में उनकी कोई स्मृति नहीं है। और यदि उनके लिये भी दत्तात्रेय पूजनीय हैं, जैसे कीनारामी अघोर परम्परा में, तो ये दोनों समानांतर धाराएँ बन जाती हैं जिनमें समय-समय पर आदान-प्रदान होता रहता है। यदि आज अघोरेश्वर महाप्रभु भगवान राम के, और उनके शिष्यों के चरित्र को देखें तो उनका आचरण नाथ योगियों सरीखा बिल्कुल नहीं दिखता, बल्कि सामाजिक चेतना से व्याप्त संत का दिखता है। अपने शोध में गुप्ता ने समाजशास्त्र के सामाजिक-राजनीतिक दृष्टिकोण को अपनाकर नाथ और अघोर परम्परा का इतिहास समसामयिक पुरोहित एवं शासक वर्ग की सत्ता के दुरुपयोग के विरोध प्रदर्शन के रूप में देखा है। इसमें जाति-प्रथा में निहित संघर्ष अंतर्भूत है। विश्लेषण करने के उद्देश्य से यह सोच सटीक है, किंतु वे बाबा कीनाराम के व्यक्तित्त्व और उनकी परम्परा को क्षत्रिय वर्चस्व की स्थापना तक ही सीमित मान लेती हैं, बाबा कीनाराम और उनके अनुयायियों की गतिविधियों को किसी शासक के दरबार से तुलनीय मानती हैं (1993, 132)। इसी दृष्टिकोण के कारण वे लिखती हैं कि इस संस्था के अधिकतर सदस्य क्षत्रिय ही हैं। उनका यह निष्कर्ष स्वीकार करना कठिन है। जब से विद्वानों ने बाबा कीनाराम के विषय में लिखना आरम्भ किया है, सभी ने कहा है कि इनकी परम्परा में सभी जाति के लोग मिलते हैं (गौड़ 1938, 739; शास्त्री 1959; चतुर्वेदी 1972)। बैरेट ने भी अपने शोध-काल में यही पाया था। बल्कि गुप्ता के निष्कर्ष पर टिप्पणी करते हुए बैरेट ने इंगित किया है कि गुप्ता का शोध पुरुष धर्माधिकारियों से साक्षात्कार, और उच्च जाति के पुरुष शोध-सहायकों पर आधारित रहा। अतएव उनको इस पंथ के अनुयायियों की विहंगमता का ज्ञान न हो पाया। यदि वे साधुओं के अतिरिक्त अन्य गृहस्थों और महिलाओं से भी साक्षात्कार कर पातीं तो उनका शोध और सारगर्भित होता (2008, 10)।

बैरेट ने अघोर परम्परा पर अपना शोध एक विशिष्ट दृष्टिकोण, स्वास्थ्य और चिकित्सा, के माध्यम से किया। उनका विषय ही ऐसा था कि उन्हें न केवल साधुओं से, अपितु हर वर्ग, जाति और लिंग के सदस्यों से व्यवहार करना पड़ा। इस कारण उनका शोध-क्षेत्र अच्छा विस्तृत बन गया। इसी कारण से उनको कीनारामी परम्परा में ही 'पुरानी शैली' और 'नवीन शैली' के औघड़ संतों से सम्पर्क हुआ। यह नवीन शैली के औघड़ संत ही थे जिनसे प्रथम साक्षात्कार के कारण गुप्ता को निराशा हुई थी। किंतु बैरेट ने भली-भाँति अभिव्यक्त किया

है कि सभी परम्पराओं में समय-काल के अनुरूप परिवर्तन होता है, और यह परिवर्तन सामाजिक उपादेयता के लिये आवश्यक है। गुप्ता से भिन्न सोच दर्शाते हुए वह अघोर परम्परा को जाति-संघर्ष के रूप में न परिभाषित कर जाति-पाँति, छुआ-छूत आदि से परे की एक मानसिक अवस्था के रूप में देखते हैं, जैसा कि औघड़ और सरभंग संत स्वयं कहते आए हैं। अघोरेश्वर महाप्रभु भगवान राम जी द्वारा प्रेरित सामाजिक और शारीरिक रोगों का संज्ञान लेते हुए बैरेट दर्शाते हैं कि किस प्रकार पवित्रता-अपवित्रता की संकल्पना अघोरियों के साथ सम्बंधित अवश्य है, लेकिन गुप्ता की सोच से बहुत भिन्न विधि से किस प्रकार सेवा स्वयंमेव अघोरी को रोगी की दृष्टि में शक्ति-संवाहक बना देती है (2008, 25-6)। इस सोच में प्रतिष्ठा या राज्य या पद की लालसा नहीं है, यहाँ शक्ति, या समाजशास्त्र के दृष्टिकोण से सामर्थ्य, लोगों को उनके रोग से मुक्त कर सबल बनाने में निहित है, न कि जाति संघर्ष कर सत्ता प्राप्त करने में।

इस प्रकार बाबा कीनाराम की जो छवि हमारे सामने उभरती है वह ऐसे संत की नहीं है जो बैठ कर केवल कविता लिखते हों या ध्यानमग्न रहते हों। वे एक बहुत ही सक्रिय पुरुष थे, निर्भय थे, युक्ति-कुशल थे, और आवश्यकता पड़ने पर औरों की सहायता के लिये अपने को प्रस्तुत करने में तत्पर संत थे। सभी के साथ करुणापूर्ण व्यवहार करते हुए भी वे उद्दंड व्यवहार करने वालों को सबक सिखाने से भी नहीं चूकते थे। वे एक अवधूत थे, एक ऐसे औघड़ जो सब स्वीकार कर लेता है, जो हर व्यक्ति और वस्तु के महत्त्व को समझता है, और फिर भी इन सभी से विरागी बना रहता है। उनके शिष्य बीजाराम ने लिखा है कि बाबा कीनाराम ने स्वेच्छा से 21 सितम्बर 1771 में समाधि ली। उस अवसर पर उन्होंने अपने सभी शुभचिंतकों को क्रिं-कुण्ड आमंत्रित किया था। उन्होंने बीजाराम से कुछ दुधुवा (मदिरा) और अपने हुक्के की मांग की, उससे कुछ कश खींचे, और फिर उन्होंने अपनी प्राण-वायु को कपाल के शीर्ष भाग से, जहाँ ब्रह्मरन्ध्र का स्थान होता है, बाहर जाने दिया। उनकी समाधि क्रिं-कुण्ड पर बनायी गई। आज भी वह एक जागृत स्थान है जहाँ प्रतिवर्ष हजारों लोग आध्यात्मिक शांति के लिए आते हैं **[चित्र 6]**।

2.2 कुछ तिथियों के बारे में

भारत में प्राय: मध्यकालीन व्यक्तित्वों की तिथि निर्धारित करना कठिन होता है, और बाबा कीनाराम भी इस स्थिति से परे नहीं हैं। विद्वानों ने उनके जन्म और उनके महाप्रयाण के लिये विभिन्न तिथियाँ निर्धारित की हैं। तीन अलग-अलग प्रकार के स्रोतों से हमें उनकी आयु और महाप्रयाण की कई तिथियाँ मिलती हैं जिनका, चूँकि किस स्रोत से वह तिथि ली गई है उस जानकारी के अभाव में, कोई ठोस मूल्यांकन करना कठिन है। ये तिथियाँ हैं:

- 1601-1743, कुल आयु 142 वर्ष (गौड़ 1938, 739-40)
- 1601-1771, कुल आयु 170 वर्ष (सिंह 1999, 28)
- 1601-1826, कुल आयु 225 वर्ष (सिंह 2006, 120)
- 1627-1769, कुल आयु 142 वर्ष (भृगुवंशी 1915, 44; चतुर्वेदी 1973, 99, 103; शास्त्री 1959, 137, 139) तथा
- 1684-1787, कुल आयु 104 वर्ष (चतुर्वेदी 1972, 690)

बाबा कीनाराम के विषय में जानकारी का पहला स्रोत तो उनके द्वारा प्रणीत परम्परा ही है। किंतु इस परम्परा द्वारा प्रकाशित साहित्य में भी हमें दो तिथियाँ मिल जाती हैं। इस साहित्य का एक स्रोत गंगा के पार पड़ाव स्थित श्री सर्वेश्वरी समूह आश्रम है, और दूसरा स्रोत क्रिं-कुण्ड स्थल अघोर शोध एवं सेवा संस्थान है। इनमें से पहली तारीख सन् 1973 में छपी यज्ञनारायण चतुर्वेदी द्वारा लिखित औघड़ भगवानराम ग्रंथ में दी गई है। इसके अनुसार बाबा कीनाराम का जन्म सन् 1601 (विक्रम संवत 1658) के आसपास हुआ था, और उन्होंने सन् 1769 (विक्रम संवत 1826) में समाधि ली (1973, 99, 103)। सन् 1999 में क्रिं-कुण्ड स्थित अघोर शोध एवं सेवा संस्थान द्वारा प्रकाशित, उदयभान सिंह द्वारा लिखित पुस्तक अघोराचार्य बाबा कीनाराम जी, में उनकी जन्म तिथि तो वही है जो यज्ञनारायण चतुर्वेदी ने दी है, किंतु उनके महाप्रयाण की तिथि 21 सितम्बर 1771 दी गई है, यानी 1601 से 1771 तक (सिंह 1999, 28)। इस पुस्तक का स्रोत बाबा बीजाराम के समय में भोजपत्र पर लिखी एक पाण्डुलिपि बतायी गयी है। बीजाराम बाबा कीनाराम के प्रमुख शिष्यों में हैं। इस पाण्डुलिपि को कई स्थानों पर कीड़े खा गए थे और यह सूख कर इतनी भुरभुरी हो चुकी थी कि हाथ लगाते ही टूटने लगती थी। इसलिये लेखक को “शेष अंशों के आधार पर वास्तविक अर्थ को समझने के लिये बीच-बीच में कुछ शब्दों को जोड़ना पड़ा...“ (सिंह 1999, 26)। परम्परा में ही इस तिथि का एक अपवाद क्रिं-कुण्ड स्थल के सातवें महंत बाबा जयनारायण राम के शिष्य बाबा गुलाबचंद आनंद ने प्रकाशित किया है। बाबा जयनारायण राम ने 1923 में समाधि ली थी, लेकिन अपने जीवन काल में ही उन्होंने श्री पोथी विवेकसार का प्रकाशन करवा दिया था। इस पोथी के चतुर्थ संस्करण में, जो

उस समय श्री जयनारायण सत्संग मंडली, वाराणसी, से उपलब्ध होती थी, दिया है कि बाबा कीनाराम का जन्म विक्रम संवत 1684, यानी सन् 1627 में हुआ था (1965, संक्षिप्त जीवनी, 1)। बहुत से विद्वान अपने लेखन में इसी तिथि का प्रयोग करते हैं।

विद्वानों द्वारा हिंदी में लिखित साहित्य हमारा दूसरा स्रोत है, जहाँ से अन्य भाषाओं में लिखने वालों ने भी प्राय: प्रत्यक्ष या परोक्ष रुप में इस जानकारी को लिया है। इसके अनुसार बाबा कीनाराम का जन्म सन् 1627 में हुआ (शास्त्री 1959, 137; कविराज 1963, 197; चतुर्वेदी 1972, 690; सिंह 2006, 118)।[34] इस दूसरे वर्ग में एक अपवाद मनीषी लेखक रामदास गौड़ हैं जिनकी पुस्तक हिंदुत्व सन् 1938 (विक्रम संवत 1995) में प्रकाशित हुई थी। उनके अनुसार बाबा कीनाराम का जन्म विक्रम संवत 1658 (सन् 1601) के आसपास हुआ था (विक्रम संवत 1995 [सन् 1938], 739), किंतु उन्होंने भी इस जानकारी का स्रोत नहीं दिया है।

हमारा तीसरा स्रोत बाबा कीनाराम की परम्परा के बाहर से प्रकाशित लोकप्रिय पुस्तकें हैं। इसका एक अच्छा उदाहरण हिंदी पत्रिका कल्याण है जिसने 1926 में प्रकाशन आरम्भ किया और शीघ्र ही हिंदू धर्म के बारे में जानकारी के लिये एक विश्वकोष का सा रुप ले लिया। इसके अगस्त 1937 के विशेषांक 'संत अंक' में बाबा कीनाराम की जीवनी पर एक छोटा सा लेख है। इसमें बाबा कीनाराम की जन्म तिथि विक्रम संवत 1684 (सन् 1627) चैत्र माह दी गई है (1937, 628)।[35] यह जानकारी बाद के अंकों में, जैसे कि अप्रैल 1991 के योगतत्त्व अंक में भी दुहराई गई है (खेमका 1991, 385) **[चित्र 7]**।

इस प्रकार हमारे पास बाबा कीनाराम की आयु के लिये विकल्पों का पूरा क्रम हो जाता है। लोगों की मान्यताएँ अलग-अलग हैं। कुछ हद तक कहा जा सकता है कि विद्वानों द्वारा प्रकाशित साहित्य उनके 142 वर्ष तक जीने का समर्थन करता है, हालाँकि सन 1951 में ही आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने इस मतभेद का संज्ञान लेते हुए इसके निष्कर्ष तक पहुँचने का प्रयास किया था। उनके अनुसार तिथियों की मान्यताओं में इतना अंतर होने का एक कारण विक्रम संवत में दी गई तिथि को ईस्वी की तिथि समझ लेना, और ईस्वी की तारीख को विक्रम संवत की समझ लेना हो सकता है। उन्होंने इस समस्या का समाधान 'आज' अखबार में दी गई तिथि को सत्य मानते हुए बाबा कीनाराम की आयु 104 वर्ष निर्धारित कर दी, क्योंकि उस काल में 104 वर्ष तक जीवित रहना कोई आश्चर्यजनक बात नहीं थी। इस प्रकार उनके अनुसार बाबा कीनाराम का जन्म सन् 1684 में, और महाप्रयाण सन् 1787 में हुआ, यह मानते हुए कि बाबा कीनाराम ने विक्रम संवत 1844 (चतुर्वेदी 1972, 690) में ही शरीर छोड़ा। शोभनाथ लाल इत्यादिक विद्वान इन तिथियों से सहमत हैं (लाल 1973, 63)। एक विश्वास करने योग्य आयु की गणना करने के लिये यह युक्ति बुरी नहीं, किंतु इस युक्ति का पूर्वाग्रह यह हो जाता है कि 104 वर्ष से अधिक की आयु विश्वसनीय नहीं मानी जा सकती।

तिथियों की इस जटिलता का एक कारण स्वयं क्रिं-कुण्ड स्थल की परम्परा भी हो सकती है। चतुर्वेदी लिखते हैं –

> एक पौराणिक आख्यान के अनुसार काशी के जिस डोम ने राजा हरिश्चंद्र को खरीदा था, उसका नाम कालू था। उसी कालू ने क्रिं-कुण्ड के आस-पास की सारी भूमि अघोराचार्य को दान दी थी। इसलिये वैदिक-युग में उस गद्दी पर बैठने वाले आचार्यों को यहाँ की जनता कालूराम कह कर सम्बोधित करने लगी। उस गद्दी पर जो भी बैठता वह कालूराम के नाम से सम्बोधित किया जाता था।... वही परम्परा कालूराम के 15वीं-16वीं सदी तक चली आ रही थी। और वही बदल कर किनारामी परम्परा हुई। अब जो भी इस गद्दी पर बैठता है किनाराम कहा जाता है । (1973, 121)

इस कथन के अनुसार बाबा कीनाराम के जीवन के लिये जिस लम्बी आयु की चर्चा की जा रही है, सम्भव है कि उस अवधि में एक से अधिक मठाधीश्वर हो चुके हो सकते हैं, जिन सबको 'कीनाराम' के नाम से सम्बोधित किया जाता रहा हो।

2.2.1 दो तैलचित्र - ख्वाजा साहिब

जैसा चतुर्वेदी लिखते हैं शायद वैसा ही हो। किंतु भारत में मुग़ल काल में बनाए गए दो तैलचित्र, जिनमें एक औघड़ साधु को अंकित किया गया है, देखने से तिथियों की यह उलझन एक और रंग ले लेती है।[36] इनमें से

---

34 गया सिंह दो और लेखकों का उल्लेख करते हैं – डॉ. कैलाश मिश्र, "संतकवि दर्शन", और डॉ. राधामोहन श्रीवास्तव, "भारत की संत परम्परा", जहाँ ये दोनों लेखक भी इसी तिथि का अनुमोदन करते हैं।

35 यही तारीख अन्य लोकप्रिय प्रकाशनों में भी पाई जाती है जैसे, रा. मिश्र 1950, 244; रामलाल 1957, 755; दास 1987, 695; पाण्डेय 1976, 7; जोशी 1974, 280 इस बात का सरलीकरण कर कहते हैं – बाबा कीनाराम का जन्म सन 1600 से 1620 के बीच में हुआ।

36 मैं कोलम्बिया यूनिवर्सिटी के प्रोफ़ेसर जैक हॉली का आभारी हूँ कि उन्होंने इन दो तैलचित्रों से मुझे अवगत कराया।

पहला चित्र लंदन के विक्टोरिया और अल्बर्ट संग्रहालय में है, जिसका शीर्षक 'ख्वाजा साहिब' लिखा हुआ है, और जिसमें अजमेर के ख्वाजा मुइनुद्दीन चिश्ती की दरगाह पर सालाना मनाए जाने वाले उर्स का चित्रण है।[37] विक्टोरिया और अल्बर्ट संग्रहालय के अंतर्जाल पर दिये इस तैलचित्र के वर्णन का हम यहाँ भावानुवाद कर रहे हैं –

> सूफ़ियों की एक सभा का यह तैलचित्र मुग़ल सम्राट शाहजहाँ के शासनकाल के दौरान, शायद 1650 और 1655 के बीच बनाया गया था। इसमें 11वीं सदी में हिंदुस्तान में सूफियों के चिश्ती सिलसिले के संस्थापक माने जाने वाले मुइन अद-दीन चिश्ती की दरगाह में सूफी संतों और दरबारियों को दर्शाया गया है। वे दरवेशों की उपस्थिति में हैं जो समा के गोल घूमनेवाले नृत्य, संगीत और ज़िक्र द्वारा आध्यात्मिक अनुभूति प्राप्त करने का प्रयास करते हैं। उनमें तीन मुस्लिम संत हैं: कुतुब अद-दीन बख्तियार काकी, जिनकी मृत्यु 1235 में हुई, स्वयं मुइन अद-दीन चिश्ती (उनकी मृत्यु 1236 में हुई) और मुल्ला शाह बदख़्शी जो पेंटिंग बनने के समय भी जीवित थे।

मुल्ला शाह बदख़्शी की मृत्यु 1661 में हुई (गदोन 1986, 153)। यह पेंटिंग 1774-1785 तक भारत के गवर्नर जनरल वॉरेन हेस्टिंग्स के संग्रह में थी। आगे इस तैलचित्र के भौगोलिक वर्णन में, जो पहाड़ियाँ पृष्ठभूमि में दिखती हैं, वह साफ़तौर पर अजमेर की पहाड़ियाँ कही गई हैं। "यह उत्सव ज़िक्र, या समा के गोल घूमने वाले नृत्य को एक भवन के आंगन में मनाये जाने का है। पेंटिंग के अग्र-भाग में हिंदू आकृतियों का समूह है, जो भिन्न धर्म-समुदायों के हैं, और जिनके नाम बहुत ही छोटे अक्षरों में लिखे हुए हैं। ये पंद्रहवीं से सत्रहवीं सदी तक के 12 हिंदू समाज सुधारक हैं।" इस वर्णन में जो बहुत ही छोटे अक्षरों का उल्लेख है वे फारसी में लिखे हुए नाम हैं जो आकृतियों के बगल या ऊपर में लिखे हुए हैं। गदोन (1986, 153-7) बायें से दायें, इन संतों की पहचान में जो कहती हैं उसका अनुवाद हम यहाँ कर रहे हैं **[चित्र 8]** –

> (1) रविदास (सक्रिय 1470), बनारस के एक मोची, जो अस्पृश्य माने जाने वाली चर्मकार जाति के थे, अपनी महान आध्यात्मिकता के लिए जाने जाते थे, और राजपूत राजकुमारी मीराबाई के गुरु थे, जो स्वयं एक महान कृष्णभक्त कवि बनीं; (2) पीपा (1353-1403), कहा जाता है कि ये एक राजा थे जिन्होंने राज-पाट छोड़कर अपना सब कुछ निर्धन लोगों में बाँट दिया; (3) नामदेव (14वीं शताब्दी का उत्तरार्ध), भगवान विठोबा की भक्ति की महाराष्ट्रीय वैष्णव संत परम्परा के ज्वलंत उदाहरण...; (4) सेना, रीवाँ के राजा के दरबार के एक नाई जो भजन लिखा करते थे और लोकश्रुति के अनुसार साधु-संतों की सेवा-टहल इस भाव से किया करते थे कि संतों की सेवा ईश्वर की ही सेवा है; (5) कमाल, कबीरदास के लब्धप्रतिष्ठ पुत्र जिन्होंने कबीरपंथियों की 12 शाखाओं में से एक की संस्थापना की; (6) औघड़, यह किसी व्यक्ति का नाम नहीं है अपितु शैव तपस्वियों की एक शाखा का नाम है जो गोरखनाथ के वे अनुयायी हैं जिन्होंने नाथ साधुओं का कनफटा संस्कार नहीं करवाया है; (7) कबीर (15वीं शताब्दी का पूर्वार्ध), नीची मानी जानेवाली दर्ज़ी जाति के महान संत और निर्भीक समाज-सुधारक जिनके लोकभाषा में गाये जानेवाले भगवद्भक्ति के पद जनमानस में बहुत लोकप्रिय हैं...; (8) पीर मछंदर, मत्स्येंद्रनाथ का पंजाबी रूपांतर, एक मिथक व्यक्ति हैं जिन्हें योग परम्पराओं में प्रथम गुरु और गोरखनाथ का भी गुरु माना जाता है; (9) गोरख (12वीं शताब्दी), जिनको पूरे भारत, नेपाल और तिब्बत में फैले शैव-साधु सम्प्रदाय में प्रमुख गुरु माना जाता है...; (10) जड़रूप, जो उज्जैन के एक हिंदू संत थे, और जिनके बारे में जहाँगीर ने अपने संस्मरण में विस्तार से लिखा है...; (11) लाल स्वामी जिनको बाबालाल दास वैरागी के नाम से भी जाना जाता है, एक समाज-सुधारक और शिक्षक थे। उनको दारा शिकोह के साथ हुई बातचीत के लिये सबसे ज़्यादा जाना जाता है। उनकी बातचीत के दौरान दाराशिकोह के सचिव चंद्रभान भी वहाँ उपस्थित रहा करते थे, शायद दुभाषिये के तौर पर, और उन्होंने ही इस बातचीत को लिपिबद्ध किया है।; (12) 12वें व्यक्ति की पहचान करना कठिन है क्योंकि लिखा हुआ शब्द काफ़ी मिट चुका है और केवल "... स्वामी" ही पढ़ा जा सकता है। सम्भव है कि ये बाबालाल के बगल में बैठे उनके गुरु चितन स्वामी हैं, और यदि यह सही है तो पेंटिंग में शिष्य को गुरु के साथ बैठाने का जो तारतम्य दिखता है, उसके अनुसार सही बैठता है।[38]

सन् 1921 में लिखते हुए बिन्यन और आर्नोल्ड ने स्पष्ट कहा था कि

---

37 ख्वाजा साहिब – https://collections.vam.ac.uk/item/O16063/khwaja-sahib-painting-unknown/।

38 बिन्यन और आर्नोल्ड की पुस्तक में इस पेंटिंग का शीर्षक "दरवेशों का नृत्य" है (कोर्ट पेंटर्स, प्लेट XVIII और XIX, पृष्ठ संख्या 40 के सामने)। उनका कहना है कि यह आख़िरी आकृति पीर पंथ स्वामी की हो सकती है (72-3)।

> किसी भी तरह हमें यह नहीं समझना चाहिये कि यहाँ अंकित आकृतियाँ जिनके नाम लिखे हुए हैं, उन व्यक्तियों की हूबहू छवि है, लेकिन उनका चित्रण सांस्कृतिक रूप से बहुत ही सटीक है, और ऐसे चेहरे भारत में आज भी देखे जा सकते हैं।

उसके बाद वे उस समय उन संतों के बारे में जो जानकारी उपलब्ध थी उसे बताते हुए यह भी कहते हैं कि कबीर और गोरखनाथ समसामयिक थे। औघड़ नामांकित आकृति के बारे में वे लिखते हैं,

> औघड़ शैव साधुओं की एक शाखा का नाम है जो मदिरा पीते हैं मांस खाते हैं। यहाँ यह नाम या तो इस पंथ, जिस का कबीर के प्रभाव में सुधार हुआ, के किसी आम अनुयायी के लिये प्रयुक्त है, या यह इस पंथ के प्रख्यात संस्थापक हैं। (1921, 73)

पेंटिंग के अधोभाग में चित्रित ये बारह हिंदू संत आमने-सामने बैठे हुए स्थूल रूप से दो भागों में विभाजित हैं मानों उनमें किसी प्रकार की वार्ता हो रही हो, जहाँ रविदास, पीपा, नामदेव, सेना, कमाल, औघड़ और कबीर बायीं ओर बैठे दल में सम्मिलित हैं, और पीर मछंदर, गोरख, जड़रूप, लालस्वामी, और शायद पीर पंथ स्वामी या चितन स्वामी दायीं ओर बैठे दल में दर्शाये गये हैं। पेंटिंग के इस भाग में इन संतों का एक या दूसरे दल में साथ बैठे चित्रित करना अकारण नहीं है। गदोन (1986, 156) ने टिप्पणी की थी कि बायीं ओर बैठे दल के सदस्य जैसे रविदास, पीपा इत्यादि संत के रूप में विख्यात थे, जबकि दायीं ओर बैठे दल के सदस्य जिनमें मत्स्येंद्रनाथ, गोरखनाथ इत्यादि हैं, योगी के रूप में प्रसिद्ध थे, और यहाँ औघड़ का बायीं ओर के संतों के दल में होना अटपटा लगता है क्योंकि उन्हें दायीं ओर के शैव योगियों के दल में होना चाहिये था। चित्र में औघड़ का आसन कबीरदास के पीछे और उनके और पुत्र कमाल के बीच में है, और वे योगियों के दल की ओर देखते हुए दायें हाथ की मुद्रा से कुछ समझाते हुए से प्रतीत हो रहे हैं। गदोन की यह पहचान सारगर्भित है। वाकई, औघड़ का स्थान संतों के दल में होकर नाथ योगियों के दल में क्यों नहीं है, जबकि पाश्चात्य विद्वानों के मत में औघड़ों का स्थान तो नाथ योगियों के साथ होना चाहिये। यहाँ इन आकृतियों के लाक्षणिक चिह्नों पर ध्यान देना भी सार्थक है क्योंकि मत्स्येंद्रनाथ और गोरखनाथ दोनों को उनके विख्यात कर्ण-कुण्डल और सिंगी के साथ दर्शाया गया है, जो नाथ साधुओं के साम्प्रदायिक चिह्न माने जाते हैं। औघड़ के कान में कोई कुण्डल नहीं है, न उनके छेदे जाने का कोई चिह्न। उनके गले में सिंगी भी नहीं है। इसलिये गदोन का असमंजस में पड़ने का कारण औघड़ों का शैव-नाथ योगी माने जाने की अवधारणा ही है **[चित्र 9]**।

औघड़ की छवि का आकार बड़ा करने पर हम देख सकते हैं कि उनके दायें कान के पीछे फारसी/उर्दू अक्षरों में 'औघड़' शब्द लिखा है, उनकी दाढ़ी घनी और काली है, एक साधु का चोगा पहने हुए हैं जिस पर छोटे-छोटे छींट सरीखे छपे हैं, सिर पर एक टोपी है जो देखने में कबीरदास की टोपी से मेल खाती है, शायद उनके बीच सैद्धांतिक साम्य दर्शाने के लिये, जैसा कि बिन्यन और आर्नोल्ड ने अनुमान लगाया है। टोपी का रंग गहरा है और उसपर सरल सिलाई की रेखाएँ परिलक्षित हैं। यदि हम विभिन्न प्रकाशनों में औघड़ साधुओं का वर्णन पढ़ें तो यह परिधान ज्ञान की खोज में लगे किसी साधक के रूप से बिल्कुल मेल नहीं खाता। वे साधना काल में प्राय: नीले या काले वस्त्र पहनते हैं। कीनाराम की परम्परा के अनुसार ज्ञान प्राप्त हो जाने के बाद ही वे श्वेत वस्त्र धारण करते हैं (चतुर्वेदी 1973, 53)। इसलिये ऐसा नहीं लगता कि यह आकृति इस पंथ के किसी 'आम अनुयायी' की है। अधिक सम्भावना यही है, जैसा कि बिन्यन और आर्नोल्ड ने स्वयं लिखा है, कि यह इसके 'प्रख्यात संस्थापक' की छवि है। यह बात इसलिये सटीक है क्योंकि पेंटिंग के इस भाग में चित्रित सभी आकृतियाँ लब्धप्रतिष्ठ, लोकप्रिय, मान्यता प्राप्त व्यक्तियों की है। यहाँ पंथ के केवल एक आम अनुयायी को चित्रित करना इस प्रतिमान से मेल नहीं खाता। अब अघोर परम्परा के संदर्भ में एक ही व्यक्ति हैं जिन्हें निर्विवादित रूप से पंथ का 'प्रख्यात संस्थापक' माना जाता है, और वे हैं बाबा कीनाराम। ऐसा इसलिये क्योंकि बाबा कीनाराम को सत्रहवीं सदी में अघोर परम्परा को पुनर्जागृत करने वाला संत कहा जाता है, और क्योंकि उनके व्यक्तित्व में वैष्णव और शैव दोनों अध्यात्म धाराएँ संगम पा जाती हैं।[39] यहाँ तक कि कुछ विद्वान उनको एक वैष्णव संत कहते हैं (देखें गौड़ 1938, 739)। धर्मेंद्र ब्रह्मचारी शास्त्री पूर्ण विश्वास के साथ कहते हैं कि दत्तात्रेय के बाद बाबा कीनाराम ही हैं जिन्होंने संतमत में अघोर परम्परा का प्रचार एवं प्रसार किया (1959, 139)। आचार्य परशुराम चतुर्वेदी भी इसे निर्विवाद मानते हैं कि बाबा कीनाराम ही अघोर पंथ के सर्वप्रमुख प्रचारक हैं (1972, 690)। यही दो धाराओं का संगम बाबा कीनाराम के व्यक्तित्व की विशिष्टता है। ऐसा कोई व्यक्तित्व हमारे सामने 16वीं या 17वीं शताब्दी में नहीं है, बाबा कीनाराम के पहले या बाबा कीनाराम के बाद, जिसे 17वीं शताब्दी में अघोर पंथ का संस्थापक कहा जा सके। यदि केवल साम्प्रदायिक चिह्नों को देखें तो वे नाथ जो अपनी परम्परा जालंधरनाथ से शुरू हुई मानते हैं, वे भी पूर्ण संस्कारों के बाद भी

39 मैलिन्सन ने लिखा है कि ब्रह्मचर्यनिष्ठ तपस्वियों के मुग़ल चित्रों में वैष्णव परम्परा के लिये अनुमानत: दशनामी संन्यासी और रामानंदी साधु चित्रित किये जाते थे, जबकि शैवों में तंत्र-विज्ञ साधु, जिनको आजकल नाथ कहा जाता है, चित्रित हैं (2013)।

कर्ण-कुण्डल नहीं पहनते और अपने आप को केवल औघड़ ही कहते हैं (व्हाइट 1996, 100), लेकिन बाबा कीनाराम के साथ ऐसा नहीं है। बनारस से उनकी परम्परा द्वारा प्रकाशित जीवनी में कहीं भी हम 'नाथ' शब्द नहीं पाते, न उन्होंने कभी अपने आप को गोरखनाथ या जालंधरनाथ का अनुयायी कहा है।[40] आज हम जानते हैं कि बाबा कीनाराम द्वारा प्रतिपादित अघोर/अवधूत परम्परा की बहुत सी बातें गोरखनाथ के कहे जाने वाले साहित्य और कबीरदास द्वारा प्रतिपादित अभेद से मेल खाती हैं, साथ ही यह भी कि उत्तर भारत में बाबा कीनाराम को संतमत का एक प्रमुख संत माना जाता है। उन्होंने जो अवधूत मत चलाया उसमें योग तो अवश्य है, लेकिन साथ ही उसमें भक्ति भी अनिवार्य रूप से है। जीवन जीने की जो कला इसमें प्रदर्शित है, जहाँ बाबा कीनाराम औरों की स्वार्थरहित होकर सेवा करते हैं, उसे संत-चरित्र ही कहा जा सकता है।[41] हमारे पास इस बात का कोई सरल उत्तर नहीं है क्यों औघड़ की इस छवि को नाथ योगियों से अलग दर्शाया गया है? यह हो सकता है कि इस चित्र में बाबा कीनाराम की वास्तविक छवि न हो, लेकिन यह आकृति बाबा कीनाराम को ध्यान में रख कर ही बनायी हुई लगती है। अन्यथा हम यहाँ औघड़ का नाथ योगियों से पृथक चित्रण का क्या कारण बता सकते हैं, जबकि अन्य चित्रों में उन्हें नाथ साधुओं के साथ ही दर्शाया जाता है।[42] अनुमान लगाया गया है कि यह पेंटिंग 1650-55 के बीच बनायी गई थी।[43] चित्र में औघड़ संत की आकृति अधेड़ उम्र की लगती है, जैसी कि बाबा कीनाराम की आयु रही होगी यदि वे सन् 1601 के आसपास जन्मे हों। हालाँकि उनकी दाढ़ी काली है, उनकी आकृति को बड़ा करने पर भूरे छींटे से दिखते हैं जो उम्र का द्योतक हो सकते हैं। यदि यह चित्र बाबा कीनाराम पर आधारित है तो यह सम्भव है कि ऐसा उनके साम्प्रदायिकता से हटकर समन्वयवादी दृष्टिकोण रखने के कारण हो। इसपर ध्यान देना इसलिये महत्त्वपूर्ण है क्योंकि जैसा कि गदोन ने ऊपर नोट किया है और जैसा मैलिंसन ने दर्शाया है, नाथ साधुओं में एक नवदीक्षित शिष्य को भी, जिसका कान फाड़ने का संस्कार नहीं हुआ है, औघड़ कहा जाता है। लेकिन जैसा कि हम बाबा कीनाराम की परम्परा में देख चुके हैं, एक समानांतर अघोर परम्परा भी है जिसकी क्रियाएँ नाथों के समान होने पर भी वे अपनी परम्परा गोरखनाथ से नहीं मानते। बल्कि वे अपनी परम्परा के आदि गुरु दत्तात्रेय को मानते हैं, जैसा, मैलिंसन के अनुसार, वैष्णव रामानंदी साधुओं और शैव दशनामी साधुओं में भी देखा जाता है (2013)।

2.2.2 दो तैलचित्र - भिन्न पंथों के संतों की गोष्ठी

एक और कारण है जो हमें इंगित करता है कि यह आकृति बाबा कीनाराम पर आधारित है। अमरीका के न्यू यॉर्क शहर के मेट्रोपॉलिटन म्यूज़ियम ऑफ़ आर्ट में एक और तैलचित्र है जिसका शीर्षक है, "भिन्न पंथों के संतों की गोष्ठी (अ गैदेरिंग ऑफ़ होली मेन ऑफ़ डिफेरेंट फ़ेथ्स)", जिसको पहली पेंटिंग से लगभग 100 वर्षों पश्चात बनाया बताया जाता है। वास्तव में यह पहली पेंटिंग के अधोभाग की नकल है जिसे एक पूरी पेंटिंग के रूप में मीर कलाँ खाँ (जन्म सन् 1710/15-मृत्यु सन् 1770/75, मैकइनर्नी 2011, 607) द्वारा बनाया कहा जाता है, जब वे दिल्ली के बादशाह मुहम्मद शाह (सक्रिय 1719-1748), और शायद उनके वारिसों के लिये 1730-1755 की अवधि में काम कर रहे थे। कला जगत में मीर कलाँ खाँ को पहले के मुग़ल तैलचित्रों की प्रतिछवि बनानेवाला एक प्रतिभाशाली कलाकार माना जाता है, और इस तस्वीर में उनके इस कला-कौशल को देखा जा सकता है। उन्होंने 'ख्वाजा साहब' तस्वीर का केवल अधोभाग लेकर उसी को एक पूर्ण स्वतंत्र चित्र का रूप दे दिया है। इसमें चित्र की पृष्ठभूमि वृक्षों से आच्छादित बनाई गई है, जैसी कि वन में रह रहे किसी तपस्वी की कुटी होती है। इस चित्र में भी बायें और दायें बैठे संतों के दो दल हैं, लेकिन दो संतों को यहाँ नहीं दर्शाया गया है। बायें वाले दल से अब संत पीपा ग़ायब हो गये हैं, और दायें वाले दल में बहुत संशोधन हो गया है। यहाँ अब बाबालाल और उनके गुरु नहीं हैं, ऐसा प्रतीत होता है कि दायीं ओर बैठी सभी आकृतियों को नाथ सम्प्रदाय के अलंकारों से चिह्नित कर दिया गया है। गोरखनाथ और मत्स्येंद्रनाथ के कानों में तो चिर-परिचित काले कुण्डल हैं, जड़रूप के कानों में भी बड़े-बड़े कुण्डल हैं, लेकिन उनके सफेद हैं। उनके माथे पर वैष्णव ऊर्ध्वपुण्ड्र भी है। हो सकता है कि यहाँ मीर कलाँ खाँ ने जड़रूप को एक वैष्णव-नाथ पहचान देने के लिये ऐसा किया हो क्योंकि शैव नाथों के अलावा और भी साधु बड़े कर्ण-कुण्डल पहनते थे (मैलिंसन 2013, पाद टिप्पणी 61)। गोरखनाथ के पीछे बैठी एक चौथी आकृति है जिसके गले में एक छोटी

40 महाराष्ट्र के श्रीदत्त सम्प्रदाय के साहित्य में यह उल्लेख है कि जब बाबा कीनाराम गिरनार पर्वत पर आए थे, तो गोरखनाथ ने उनका मार्गदर्शन किया था (जोशी 1974, 280; शास्त्री 1977, 455)।

41 इतिहास में और पीछे जाने पर हम पाते हैं कि बुद्धघोष के विशुद्धिमग्ग में श्मशानवासी साधु की चर्या का वर्णन है। इस संदर्भ में अवधूत और अघोर शब्द एक ही प्रकार के साधकों का निरूपण करते हैं (मालविका 1966, 368)।

42 देखें मैलिन्सन, 2013, चित्र 11, तशरीख़ अल अक़्वाम के संदर्भ में शम्भुनाथ का एक युवा औघड़ के साथ का तैलचित्र।

43 नोवेत्ज़्के (2008, 50) ने भी आर्नोल्ड और बिन्यन के इस चित्र का संदर्भ दिया है, लेकिन उनका अनुमान है कि यह चित्र अट्ठारहवीं शताब्दी के पूर्वार्ध का है।

सी नाथ सिंगी है। यह सिंगी गोरखनाथ के गले में भी देखी जा सकती है, लेकिन मत्स्येंद्रनाथ के गले में नहीं क्योंकि उन दोनों को हाथों में संगीत वाद्य लेकर बजाते हुए दिखाया गया है, जिससे मत्स्येंद्रनाथ के शरीर का सामने का हिस्सा, और सिंगी, छिप जाती है। इस तस्वीर में औघड़ की आकृति में भी कुछ बदलाव हुआ है। हालाँकि अभी भी वे बहुत कुछ वैसे ही दिखते हैं जैसे कि 'ख्वाजा साहब' तस्वीर में, इस चित्र में उनको साम्प्रदायिक चिह्नों से अलंकृत कर दिया गया है। जड़रुप की ही तरह उनके माथे पर भी अब एक ऊर्ध्वपुण्ड्र है, लेकिन वे नाथ साधुओं के दल में इस तस्वीर में भी नहीं हैं। वे अभी भी बायीं ओर, संतों के साथ बैठे हैं। यहाँ उनका बायाँ हाथ दिखता है, जिसमें उन्होंने एक गोल पंखा सरीखा पकड़ा हुआ है, जो शायद एक मोछ्छल है, लेकिन देखने में किसी तालपट की तरह दिखता है और एक वैष्णव चिह्न हो सकता है, हालाँकि वैष्णव-नाथ साधुओं को भी कभी-कभी उनके हाथों में एक ऐसे पंखे के साथ दिखाया जाता है (मैलिंसन 2013, चित्र 9, पाद टिप्पणी 77)। इस चित्र को बड़ा करने पर मालूम होता है कि न केवल उनके दायें कान को छेदा हुआ है, बल्कि उसमें एक साधुओं वाली बाली है जो उनकी लोलकी से अंदर जाकर कान के पीछे से होते हुए उनके कान के अंदर की कुर्री से बाहर निकलती हुई कान के अंदर ही, नीचे की ओर दृष्टिगोचर होती है। लेकिन यह बाली नाथ साधुओं वाले बड़े कर्ण-कुण्डल जैसी नहीं है। तो यहाँ औघड़ की आकृति में इन बदलावों का हम क्या अर्थ लगाएँ? साफ है कि उनको एक वैष्णव, और हाथ में लिये पंखे (देखें लॉस्टी 2016, मैलिंसन 2011, चित्र 2) एवं कान में बाली के चलते शायद नाथ पहचान भी दी जा रही है। यह कहना कठिन है कि मीर कलाँ खाँ उन साधुओं के बारे में, जिनको मैलिंसन ने मुग़ल काल में वैष्णव-नाथ बताया है, कितनी अच्छी तरह जानते थे कि उन्होंने एक औघड़ की आकृति के वैष्णव आयाम को उभारते हुए भी उनके विशिष्ट चरित्र को जताते हुए नाथ कुण्डल न देकर दूसरे तरह की बाली से अलंकृत किया है। यहाँ हमने जो जानकारी प्रस्तुत की है वह तर्क पर आधारित एक अप्रमाणित अनुमान मात्र है। इस अनुमान के यथार्थ को परखने के लिये और शोध करने की आवश्यकता है **[चित्र 10]** **[चित्र 11]**।

3 साहित्यिक समीक्षा

बाबा कीनाराम के काव्य में अघोर तथा वैष्णव, दोनों परम्पराओं का समावेश दिखता है। उन्होंने कई काव्यों की रचना की, किंतु सभी रचनाएँ उपलब्ध नहीं हैं। श्री सर्वेश्वरी समूह द्वारा प्रकाशित उनका साहित्य निम्नलिखित है –

1. विवेकसार (पुष्पिकानुसार संवत 1812, सन् 1755)
2. गीतावली
3. राम-रसाल
4. राम-गीता
5. उन्मुनी राम

उनकी रचनाएँ जो उपलब्ध नहीं हैं -

6. राम चपेटा
7. राम मंगल
8. "योग वशिष्ठ" का पद्यानुवाद (चतुर्वेदी 1972, 694)।

उनकी प्रकाशित रचनाओं में विवेकसार और उन्मुनी राम मुख्यत: दोहा और चौपाई में लिखे गए हैं, जबकि गीतावली, राम-रसाल और राम-गीता में कुछ ऐसे पद हैं जिन्हें शब्द पीलुका, भैरवी, भैरों इत्यादि रागों में गाया जा सकता है, और अन्य में दण्डक और चंचरीक पद हैं।[44] इनमें विवेकसार, उन्मुनी राम और गीतावली उनके अघोर और निर्गुण भाव को दर्शाती हैं, जब कि राम-रसाल और राम-गीता उनके वैष्णव और सगुण भाव को दर्शाती हैं, शायद इसलिये क्योंकि उनके प्रथम गुरु उत्तर प्रदेश राज्य के कारों ग्राम के निवासी संत शिवाराम

44 इन प्रकाशित रचनाओं में विवेकसार में 126 दोहे, 74 चौपाई और 10 छप्पय हैं, जिनका कुल योग 210 पद होता है (चतुर्वेदी 2010), लेकिन यह संख्या गणना की विधि पर निर्भर करती है। यदि हर चौपाई की एक पंक्ति को एक चौपाई मानें तो यहाँ चौपाइयों की संख्या 142 होती है। उसी प्रकार छप्पयों में भी, यदि हर दो पंक्ति को एक छप्पय मानें तो उनकी संख्या 30 होती है (चतुर्वेदी 1975)। श्री सर्वेश्वरी समूह द्वारा फरवरी 1975 में प्रकाशित विवेकसार के संस्करण में पदों की गणना इस दूसरे ढंग से की गई है, जिसके अनुसार इसमें पदों की कुल संख्या 298 होती है। उन्मुनी राम में 217 दोहे और एक सवैय्या हैं जिनकी कुल संख्या 218 होती है। गीतावली में 'शब्द' नामांकित पदों की संख्या सात है, छ:-छ: पद रेखता और दण्डक के हैं, दो-दो पद सोरठा, कवित्त और भैरवी के हैं, और एक-एक पद शब्दपीलुका, पद सिंध भैरवी, और शब्द सिंह भैरवी के हैं, जिन सब की कुल संख्या 29 पद बैठती है। राम-रसाल में 25 पद शब्द भैरों के, 50 पद दण्डक के, और छ: चंचरीक के हैं जिनकी कुल संख्या 81 पद होती है। राम-गीता में आठ पद कवित्त के हैं, पाँच पद सवैय्या के, और तीन पद छप्पय के हैं, जिनकी कुल संख्या 16 पदों की होती है। बाबा कीनाराम की सभी रचनाओं को मिलाकर पदों की संख्या करीब 900 बैठती है (सु. मिश्र 2004, 79)। यदि केवल पद-संख्या को देखें तो गोरख-बानी, कबीर ग्रंथावली या सुंदरग्रंथावली आदि की तुलना में यह संख्या बहुत अधिक नहीं है, लेकिन जितनी है उतनी ही उनके दर्शन और व्यवहार को समझने के लिये पर्याप्त है।

जी वैष्णव थे। जैसा कि हम ऊपर पढ़ चुके हैं, शिवाराम जी एकनिष्ठ राम-भक्त थे जिन्होंने स्वयं योग और भक्ति पर एक वृहद ग्रंथ की, भक्ति जैमाल नाम से रचना की। माना जाता है कि इस ग्रंथ के प्रेरणा स्रोत संत तुलसीदास रहे, और जिसमें 900 से अधिक अध्याय हैं। वह ग्रंथ अब अप्राप्य है और पुरानी प्रतियों को खोज पाना भी कठिन है। जैसा कि विद्वानों ने पाया है, वैष्णव सम्प्रदाय में योग का सशक्त प्रचलन है।[45] शिवाराम अपने समय के एक प्रतिष्ठित वैष्णव संत थे और उन्होंने अपनी रचनाओं में योग के उस आयाम को अक्षुण्ण रखा है।[46] यह कहा जा सकता है कि बाबा कीनाराम ने अध्यात्म को काव्य में अभिव्यक्त करने की कला अपने प्रथम गुरु बाबा शिवाराम से पाई, और फिर उसको और परिष्कृत कर उसमें अपनी यात्राओं के दौरान सुने अन्य परम्पराओं के शब्दों और विचारों को भी समाहित किया।

यदि हम विधा के अनुसार इन पाँच रचनाओं का वर्गीकरण करें तो पाएँगे कि विवेकसार एक अध्यात्म-योग का ग्रंथ है, उन्मुनी राम एक दार्शनिक-बौद्धिक रचना है, गीतावली एक तांत्रिक और सामाजिक ग्रंथ है, और राम-रसाल और राम-गीता भक्ति जनित रचनाएँ हैं। यहाँ हम केवल दो रचनाओं - विवेकसार और गीतावली - का अवलोकन करेंगे। लेकिन इस समीक्षा के अंत में हम बाबा कीनाराम की साहित्यिक रचनाधर्मिता का अवलोकन उनके कुछ और ग्रंथों से उद्धरण देकर करेंगे।

3.1 विवेकसार

विवेकसार को उनकी प्रमुख कृति माना जाता है जिसमें उन्होंने अपने अवधूत मत का प्रतिपादन किया है।[47] पुष्पिकानुसार उज्जैन नगर में क्षिप्रा नदी के तट पर सन 1755 (वि.सं. 1812) में लिखा गया है। यह योग-साधना और भक्ति पर एक छोटी से रचना है जिसे अष्टांग योग की परिपाटी के अनुसार आठ मुख्य भागों में, जिन्हें अंग कहा गया है, विभाजित किया गया है।[48] रचना के अंत में एक नौवां भाग भी है जिसे अंग न कहकर केवल 'फल स्तुति' नाम दिया गया है, जिसमें इसके पाठ और अभ्यास के लाभ का वर्णन है। बाबा कीनाराम स्वयं इसे एक अष्टांग योग का ग्रंथ मानते हैं क्योंकि वे स्पष्ट रूप से ऐसा फल-स्तुति में कहते हैं –

45 देखें रांगेय राघव, गोरखनाथ और उनका युग, और हजारीप्रसाद द्विवेदी, नाथ सिद्धों की बानियाँ, 13। नाथ परम्परा में समाहित हो चुकी परम्पराओं की चर्चा करते हुए द्विवेदी कपिल मुनि की परम्परा का उल्लेख करते हैं, जिनसे कपिलानी मत का उद्भव हुआ। भागवत में कपिल मुनि योग और वैराग्य के आचार्य के रूप में प्रतिष्ठित हैं।

46 गोपाल चंद्र आनंद द्वारा 1965 में प्रकाशित विवेकसार में भक्ति जैमाल के उद्धरण हैं जिनमें सूक्ष्म शरीर के चक्र बेधन का विस्तृत वर्णन है, जैसा कि गोरखनाथ की बानियों में मिलता है। यहाँ हम एक उदाहरण दे रहे हैं - | अष्टांग योग जिन साध्यो, लगी समाधि अखंड । | उलटि पवन तिन बाँध्यो, चढ़ि वायु ब्रह्माण्ड ॥1॥ (श्री पोथी विवेकसार, संक्षिप्त जीवनी, 10 सं. 1)। | अर्थात जो अष्टांग योग साध लेता है वह सतत समाधि के आनंद को प्राप्त कर लेता है। ऐसा व्यक्ति श्वास प्रक्रिया को उलट कर अंदर धारण कर लेता है, और वह श्वास ब्रह्माण्ड (या ब्रह्मरंध्र) के उच्चतम शिखर तक पहुँच जाता है। इसका आगे वर्णन है - 1. (मूल चक्र) ॥चौपाई॥ नौ चक्रन कर करहुं बखाना । सुनहु नृपति तुम परम सुजाना ॥ मूल चक्र वश गुदा मझारा । चारि पत्र जनु अगिनि अंगारा ॥ ताहि कमल महँ योनि तृकोना । ता महँ पुरुष बसै गहि मौना ॥ 'रा' अक्षर जस दीपक जोती । तेहि महँ पुरुष कांति उद्योती ॥ नाम गणेश अरुण तन सोई । ताहि लखत बड़ पण्डित होई ॥ मानसिक पूजा तहवां कीजै । लड्डुवा धूप गणेशहि दीजै॥ अजपा जाप तहँ पाँच हजारा । एक चक्र कर अस ब्योहारा ॥ (श्री पोथी विवेकसार. चक्र वर्णन, 10)। अर्थात, हे राजन, आप से नौ चक्रों का वर्णन करते हैं । प्रथम चक्र गुदा मूल में स्थित है, इसकी चार पंखुड़ियाँ हैं जो अग्नि समान जाज्वल्यमान हैं। उस कमल में योनि-त्रिकोण विद्यमान है जिसमें पुरुष तत्त्व शांत पड़ा है। इसका अक्षर 'रा' है जो दीप-ज्योति की भाँति प्रकाशमान है, और उसमें उस पुरुष का सौंदर्य झलकता है। उसका नाम गणेश है, शरीर सूर्य के समान है, लेकिन कोई विज्ञ व्यक्ति ही उसे जान सकता है। वहाँ मानसिक पूजा करें, गणेश को लड्डू और धूप अर्पित करें। वहाँ अजपा जप 5000 बार करें। प्रथम चक्र के लिये यही सही पूजा है। इन पंक्तियों में हम सहज ही परम्पराओं के सम्मिलन को देख सकते हैं। चक्रों की परिकल्पना नवीन नहीं है, उपनिषदों में उनका उल्लेख है, गोरखनाथ ने उनके बारे में बहुत कुछ कहा है। लेकिन जहाँ गोरखनाथ का साहित्य छ: चक्रों की बात करता है (बड़थ्वाल, गोरख-बानी, 36, सं. 5), शिवाराम नौ चक्रों को गिनाते हैं। योगराजोपनिषद में भी नौ चक्रों का उल्लेख है (ब्रह्मचक्र, स्वाधिष्ठानचक्र, नाभिचक्र, हृदयचक्र, तालुचक्र, भ्रूचक्र, ब्रह्मरंध्रचक्र, व्योमचक्र। देखें आचार्य, उपनिषद् ज्ञान खण्ड, 544-5)। बौद्धों में प्राय: चार चक्र ही गिने जाते हैं। शिवाराम ने गोरखनाथ की ही तरह अजपा जप का उल्लेख किया है, लेकिन वहाँ वे गणेश की कल्पना करते हैं और उन्हें लड्डू और धूप चढ़ाने का विधान मानते हैं, जबकि गोरख ऐसा कुछ नहीं कहते हैं। शिवाराम 'रा' शब्द के विषय में लिखते हैं और पुरुष जिस योनि-त्रिकोण में स्थित है उसका उल्लेख करते हैं, जबकि गोरख इस विषय में मौन हैं। सांख्य दर्शन में प्राय: पुरुष अव्यक्त तत्त्व रहता है, जबकि प्रकृति व्यक्त तत्त्व होती है, जिसका निरुपण त्रिकोणीय योनि के रुप में किया जाता है। बाबा शिवाराम के वर्णन में यह पुरुष तत्त्व अव्यक्त न होकर मूर्त गणेश में परिलक्षित है, जो हिंदुओं में शिव और पार्वती के पुत्र माने जाते हैं।

47 बाबा कीनाराम लिखते हैं, "यह संसार असार अति पाँच भूत की वारि। तातें यह अवधूत मत विरच्यों स्वमति विचारि॥" (विवेकसार, फल स्तुति, दोहा 8)। अवधूत शब्द का प्रयोग प्राय: तंत्र मार्ग के चैतन्य महापुरुषों के लिये किया जाता है, लेकिन बौद्धों की सिद्ध परम्परा और नाथ पंथ के कुछ अनुयायियों के लिये भी इसका प्रयोग प्रचलित है। गोरखनाथ इस शब्द का प्रयोग केवल योगियों के लिये करते प्रतीत होते हैं। विवेकसार में दिये काया-परिचय के संदर्भ में यह बात विशेष महत्व रखती है। व्हाइट लिखते हैं - ... चौदहवीं शती में लिखित शारंगधर पद्धति योग की दो विधाओं "षडांग" और "अष्टांग" का निरुपण क्रमश: "गोरखनाथी" और "मृकण्ड-पुत्र" (यह दत्तात्रेय का द्योतक है क्योंकि वही मार्कण्डेय पुराण में योग-सिद्धांत का उद्घाटन करते हैं) के नामों से करती है। गोरख उपनिषद में गोरख पहले को अकुल और दूसरे को अवधूत कहते हैं" (व्हाइट 1996, 141)।

48 कविराज इसको षडांग योग की कृति मानते हैं (भारतीय संस्कृति और साधना, 198)।

अष्ट अंग एहि महँ कह्यौ समुझि लेहु मतिवान ।
प्रान प्रतिष्ठा नाम लखि रामकिना तत्त्व ज्ञान ॥

ओ मतिवान! मैंने इसमें आठ अंगों का वर्णन किया है, तुम उसे ठीक से समझ लो। कीनाराम ने उस 'नाम' के सहारे ही उस तत्त्व के ज्ञान को पाया है।

यह ग्रंथ गुरु-शिष्य वार्तालाप के रूप में लिखा गया है। कीनाराम के पहले से ही यह शैली इतनी लोकप्रिय हुई थी कि, जैसा हजारीप्रसाद द्विवेदी कहते हैं, इसका प्रयोग कबीर, नानक, दादू (द्विवेदी 1959, 88-9), प्रेम-मार्गी सूफ़ी (सिंह 2010, 3), और रामानंद सम्प्रदाय (बड़थ्वाल 1960, 17) की परम्पराओं में भी किया गया है। इस ग्रंथ की परिकल्पना बहुत ही सोच-विचारकर सुव्यवस्थित ढंग से की गई है। वे इसमें निहित सिद्धांत का निरूपण क्रमिक विकास के माध्यम से एक विषय के बाद उससे सम्बंधित दूसरे विषय के रूप में करते हैं। विवेकसार के हर अंग में गुरु उस परम सत्ता से एकात्म होने के अगले चरण के विषय में बताते हैं।

इस ग्रंथ में बाबा कीनाराम का काव्य सौष्ठव प्रबुद्ध है। यहाँ उन्होंने केवल तीन प्रकार के पदों का प्रयोग किया है। ये हैं दोहा, चौपाई और छप्पय। इनका भी उपयोग गुरु-शिष्य की वार्ता को गति और सुरुचि, दोनों के साथ आगे बढ़ाने के लिये किया गया है। हम पाएँगे कि वे दोहों का प्रयोग शिष्य और गुरु के भावों, भक्ति, एवं झीने से कथानक को एक परिदृश्य से दूसरे तक ले जाने के लिये करते हैं। दोहों के माध्यम से ही शिष्य गुरु से प्रश्न पूछता है, और प्राय: दोहों के माध्यम से ही गुरु संक्षिप्त या सम्पुटित उत्तर देते हैं। जहाँ सैद्धान्तिक अवयवों के विस्तार से निरूपण की आवश्यकता होती है, वहाँ वे चौपाइयों का उपयोग करते हैं, जैसे काया के विभिन्न अवयव सृष्टि रचना के पहले कहाँ थे, और सृष्टि रचना के पश्चात् उनकी स्थिती कहाँ होती है इत्यादि। छप्पयों का प्रयोग वे केवल एक स्थान पर, शून्य अंग में, समाधि अवस्था में साधक को अनुभूत उसकी विराट अवस्था का वर्णन करने के लिये करते हैं। इससे पाठक के हृदय में एक विचित्र प्रकार का उल्लास प्रस्फुटित होता है, जो अनुभवगम्य है।

विवेकसार के अंगों के नाम हैं – गुरुपद स्तवन, ज्ञान अंग, विज्ञान अंग, निरालम्ब अंग, समाधि अंग, अजपा अंग, शून्य अंग, रक्षा अंग, और फल स्तुति। संस्करणों के आधार पर इन अंगों के नामों में मामूली सा अंतर दिखता है। सन् 1965 में श्री जयनारायण सत्संग मण्डली द्वारा प्रकाशित श्री पोथी विवेकसार में पूरे ग्रंथ को केवल आठ ही अंगों में विभाजित किया गया था। इनके नाम थे – सतगुरु स्वरूप वर्णनम्, ज्ञान अंग वर्णनम्, विज्ञान का अंग, निरालम्ब को अंग, शम को अंग, अजपा को अंग, सुन्न को अंग, और रक्षा को अंग। अंगों के इन नामों के चलते कुछ नामों में अर्थ में भी हल्का सा अंतर आ जाता है, जैसे गुरुपद स्तवन का अर्थ होगा श्री गुरु के चरणों की अभ्यर्थना, जबकि सतगुरु स्वरूप वर्णनम् का अर्थ श्री गुरु के रूप की अभिव्यक्ति है। बाकी अंगों के नामों के अर्थ समान ही निकलते हैं, एक को छोड़कर, और वह है समाधि अंग और शम को अंग का अंतर। समाधि की अवस्था से हम प्राय: ध्यान की उस इंद्रियातीत अवस्था को समझते हैं जहाँ आत्म-साक्षात्कार हो जाता है, जबकि शम शब्द का अर्थ निकलता है इंद्रिय-निग्रह या वासनाओं से मुक्ति। समाधि की अवस्था पाने के लिये शम आवश्यक है, किंतु दोनों के अर्थ समान नहीं हैं। सन् 1965 वाले संस्करण में अंतिम, फल-स्तुति का शीर्षक नहीं है, हालाँकि श्री सर्वेश्वरी समूह द्वारा 1975 एवं 2010 में प्रकाशित संस्करणों में वह है। श्री जयनारायण सत्संग मण्डली द्वारा प्रकाशित संस्करण में एक और अंतर यह है कि उनका शीर्षक सतगुरु स्वरूप वर्णन पहले 23 दोहों के बाद आता है, और श्री गुरु का स्वरूप वर्णन दो ही दोहों में समाप्त हो जाता है। श्री सर्वेश्वरी समूह द्वारा प्रकाशित संस्करणों में उनका शीर्षक गुरुपद स्तवन ग्रंथ के आरम्भ में ही आ जाता है। हालाँकि इन अंगों के नामों में समाधि अंग और अजपा अंग के अतिरिक्त और कहीं भी अष्टांग योग का नाम नहीं आया है। इन दो अंगों में शास्त्रीय रूप से योग की जो परिकल्पना है, उसी का निरूपण किया गया कहा जा सकता है। किंतु बाकी के अंगों की विषय-वस्तु का मेल हम कुछ इन अंगों का सूक्ष्म अध्ययन कर, और कुछ अपनी विचारशीलता से, योग के अष्ट अंगों से मेल खाता मान सकते हैं। इसकी चर्चा हम आगे विवेकसार की महत्ता वाले भाग में कर रहे हैं।

ग्रंथ का आरम्भ सृष्टि रचना की प्रक्रिया से होता है और फिर उस रचना एवं शरीर रचना के घटकों का उद्घाटन होता है। फिर यह ग्रंथ एक साधक को अपने ही अंतर की यात्रा में समाधि की ओर ले जाता है जहाँ शिष्य अपने सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञ एवं सर्वव्यापी रूप को पहचान लेता है। इसके बाद जो निरालम्ब अंग आता है उसमें पद्य संरचना की दृष्टि से एक रोचक चित्र उभरता है।

इस निरालम्ब अंग में न केवल सूक्ष्म आध्यात्मिक घटकों का चरित्रवर्णन है, बल्कि उनको कैसे जाना जाए इसका भी निरूपण है, जिन के आधार पर हम इस अध्याय को और छोटे अंशों में बाँट कर देख सकते हैं। इनमें पहला विषय है सृष्टि रचना से पहले के दैवीय घटकों के मूल चरित्रों का ज्ञापन (चौपाई 156-165), दूसरा विषय है सृष्टि रचना में उनका सक्रिय होना और वे किस प्रकार से काया में अपना स्थान पाते हैं (चौपाई 167-177), और तीसरा विषय है इस ब्रह्माण्ड में उनकी उत्पत्ति (चौपाई 180-190)। इनमें से दूसरे और तीसरे विषय की चौपाइयाँ, जिनकी 11-11 की संख्या है, एक विशेष प्रकार का आंतरिक सम्बंध दर्शाती हैं। यदि हम इन तीन विषयों के आधार पर तीन कोष्ठ बनाएँ तो पहले विषय की सभी चौपाइयाँ दूसरे विषय की चौपाइयों से सीधे रूप में 1-1 मिलान पाती हैं। लेकिन दूसरे विषय की सभी चौपाइयाँ तीसरे विषय के कोष्ठ की

चौपाइयों से विपर्यय का सम्बंध दिखाती हैं, यानी दूसरे विषय के कोष्ठ की चौपाई संख्या एक तीसरे विषय के कोष्ठ की चौपाई संख्या 11 से मिलती है, संख्या दो का मेल संख्या 10 से बैठता है इत्यादि। उदाहरण देखें – कोष्ठ 1, विवेकसार चौपाई संख्या 156 (हौं तो हृदय नाहीं जहिया रहै अनूप महा मन तहिया) का सीधा सम्बंध है कोष्ठ 2 की पहली चौपाई, संख्या 167 से (मन को जीवन पवन प्रमाना समुझि लेहु यह चतुर सुजाना)। किंतु कोष्ठ 2 की पहली चौपाई का सम्बंध कोष्ठ 3 की पहली चौपाई से न होकर उसकी अंतिम चौपाई, संख्या 190 से है (स्वाँसा पवन माँह ते होई हे शिस अकल अत्व गति सोई)। इस प्रकार कोष्ठ दो की चौपाइयों का कोष्ठ तीन की चौपाइयों से विपर्यय का सम्बंध बना दिखता है।

तालिका 1 चौपाइयों के आंतरिक सम्बंध

#	तत्त्व	1. अव्यक्त सृष्टि तत्त्व (156-65)	सम्बंध	2. काया में स्थापित रूप (167-77)	सम्बंध	3. ब्रह्म स्वरूप (180-90)
1.	मन	हौं तू हृदय नाहीं जहिया। रहै अनूप महा मन तहिया॥	⟷	मन को जीवन पवन प्रमाना। समुझि लेहु यह चतुर सुजाना॥		अलि लै भयउ तवति निरंजन। जानि लेहु अध्यातम सज्जन॥
2.	पवन	नाभी कर नाहीं जब रेखा। निराकार महँ पवन विशेषा॥	⟷	स्वाँस प्रान को जीवन जानी। ताते कहो सत्य पहिचानी॥		देव निरंजन ते शिव भयऊ। निरालंब को आसन कयऊ॥
3.	अनहद शब्द	हौं तूँ अनहद नाहीं जबही। शब्द ओंकार माँह रह तबही॥	⟷	बहुरि शब्द को जीवन कहिये। प्रान प्रतिष्ठा तेते लहिये ॥		शिव ते भये काल अति भारी। जो शुभ अशुभ प्रलय संहारी॥
4.	प्राण	जब नहिं हते निरञ्जन राई। प्रान अव्यक्त मध्य ठहराई॥	⟷	द्वितीय प्राण का जीवन ऐसा। ब्रह्म ब्रह्म सुब्रह्मै तैसा॥		काल माहँ ते सुन्य अनूपा। यह अनुभव को रूप अनूपा॥
5.	हंस	गगन केर जब नाहीं तंता। अविनाशी महँ हंस रहंता॥	⟷	ब्रह्म को जीवन सहज सरूपा। नाम कहों तस हंस अनूपा॥		अविनाशी सो शिव प्रगटानो। सो सब शास्त्र वेद मत जानो॥
6.	ब्रह्म			जिन जन हंस जानि जिय जोई। भयो परम पद प्रापत सोई॥		ज्योति ते भयो ब्रह्म को उद्भव। सदा अशंक जाहि नहिं औरव॥
7.	काल// अनूप/ अविनाशी	भयो कमल नहिं तब सुनि लेहू। काल सुन्य महँ करि रह गेहू॥	⟷	अबिनाशी को जीव न जानौ। कहों अनूप सदा पहिचानौ॥		अविगति सो कहि प्रान जनायो। मत सिद्धांत सार कहि गायो॥
8.	शून्य	नहिं अनूप हो तो संसारा। निर्गुन सुन्य माहँ तह सारा॥	⟷	अब अनूप को जीवन ऐसा। सुन्य सुन्य को अंतर जैसा॥		प्रान माहँ ते मन प्रगटाना। सदा निरंतर सो करि जाना॥
9.	शिव	कया कर्म जब एक न रहई। शीव महा तब जीवन अहई॥	⟷	सून्य करे जो जीवन अहई। शिव सो सदा निरंतर रहई॥		मन ते भयउ शब्द परिनामा। ताते कहिय अनंत अनामा॥
10.	जीव	चंद्र नहीं होत्यौ परकासा। जीव निरञ्जन के तब पासा॥	⟷	शिव न जीव तोहि कहि अवधूता। देव निरंजन सदा अरुता॥		शब्द माँह तब पवन प्रकासा। जेहि ते जोगी जगत निरासा॥
11.	निरंजन	सुषमनि को नाहीं निर्माना। सुन्य माहँ तब निरञ्जन जाना॥	⟷	जीवन सुनो निरंजन केरा। निराकार महँ संतत डेरा॥		स्वाँसा पवन माहँ ते होई। हे शिष अकल अत्व गति सोई॥

चौपाइयों के इस प्रकार के आंतरिक सम्बंध से जो छवि उभरती है वह वैसी ही है कि जब हम एक 'पिन होल कैमरा' के माध्यम से किसी वस्तु को देखते हैं। मतलब जो काया में विद्यमान है वही बाहर भी उपस्थित तो है, लेकिन काया में अपवर्तन के चलते उसकी उल्टी छवि दृष्टिगोचर होती है।

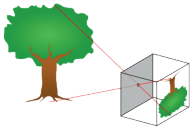

लेकिन यह अपवर्तन मात्र सिर नीचे पैर ऊपर होने जैसा नहीं है। यह अपवर्तन सूक्ष्म और स्थूल तत्त्वों का है। विवेकसार के अनुसार सृष्टि का आरम्भ सूक्ष्म से सूक्ष्मतर तत्त्वों से हुआ, जिनसे स्थूल से स्थूलतर घटकों की उत्पत्ति हुई। काया में अपवर्तन के कारण जो प्रतीत होता है वह स्थूल तत्त्व पहले है, और फिर बहुत गहराई में सूक्ष्म से सूक्ष्मतर तत्त्वों की उपस्थिति ग्राह्य है। आध्यात्मिक दृष्टि से यह इंगित करता है कि इस संसार की हमारी समझ उल्टी है। हम स्थूल एवं भौतिक वस्तुओं पर अधिक ध्यान देते हैं, सूक्ष्म वस्तुओं पर उतना नहीं, जब कि आध्यात्मिक जगत में सूक्ष्म की ही प्रधानता है, स्थूल की नहीं।

इस ग्रंथ का आठवाँ अंग, रक्षा अंग, कुछ भिन्न है क्योंकि इसका आशय है कि जो ज्ञान और अनुभव शिष्य ने प्राप्त किया है उसकी रक्षा करने की आवश्यकता है, अन्यथा शिष्य उसको खो भी सकता है। यह भिन्न

इसलिये है क्योंकि आम अवधारणा के अनुसार एक बार ऐसी स्थिति प्राप्त हो जाने पर फिर वापस पहले जैसी अवस्था में लौटना सम्भव नहीं होता है – जानत तुम्हहि तुम्हइ होइ जाई (देखें पोद्दार 2018, रामचरित-मानस अयोध्याकाण्ड 126.2)। लेकिन इस आठवें अंग की सीख यह है कि यदि शिष्य अपना आत्म-नियंत्रण खो बैठें, या गुरु द्वारा इंगित जीवन-शैली भुला बैठें, तो वे प्राप्त ज्ञान को भी खो दे सकते हैं। इसलिये गुरु इस ज्ञान की रक्षा के लिये चार उपाय बताते हैं –

आतम रक्षा चार विधि है शिष सहज सुबोध । दया विवेक विचार लहि संत संग आरोध ॥255॥

गुरु कहते हैं कि इस आत्म-ज्ञान की रक्षा चार बहुत ही सरल विधियों से हो सकती है – प्राणियों पर दया, सांसारिक व्यवहार में विवेक, सब के प्रति अच्छा विचार, और संतों के सान्निध्य का अवलम्बन लेने से यह कार्य स्वयंसिद्ध हो जाता है। फिर गुरु इन चार विधियों का विस्तार करके कहते हैं कि शिष्य को पर-पीड़ा को समझना चाहिये, संग-कुसंग पहचान कर सत्संग का आश्रय लेना चाहिये, सभी प्राणियों के प्रति समान रुप से करुणा का भाव रखना चाहिये, इत्यादि। इसके बाद गुरु शिष्य को ज्ञान-प्राप्ति के गर्व या अहं से भी दूर रहने की चेतावनी कुछ उलटबासियों के द्वारा देते हैं, जो कुछ इस प्रकार हैं –

वह जिसने गाया, उसने वास्तव में नहीं गाया, जिसका गान नहीं हुआ, वास्तव में उसी ने गाया। जिसने जाना, वास्तव में उसने नहीं जाना। जिसका ज्ञान ही नहीं था, वास्तव में उसी ने जाना। जिसने देखा, सत्य में उसने नहीं देखा, जो अदृश्य रहा, उसी ने सही रुप में देखा इत्यादि (विवेकसार पद सं. 269-281)। इस प्रकार अर्जित ज्ञान के प्रति अहं-भाव के बारे में चेता कर गुरु एक विज्ञ पुरुष की जीवन शैली पर प्रकाश डालते हैं। इसके बाद ग्रंथ का अंतिम अध्याय, फल-स्तुति, आरम्भ होता है, जिसमें इस बात पर बल दिया गया है कि एक सतगुरु के बिना भवसागर को पार करना बहुत मुश्किल है।

3.2 गीतावली

जहाँ विवेकसार और उन्मुनी राम बाबा कीनाराम के निर्गुण विचारों का प्रतिपादन करते हैं, गीतावली उनके अघोर व्यक्तित्व पर प्रकाश डालती है। यहाँ हम उनकी विधि-निषेध से परे की, सांध्यभाषा संपृक्त, कविता का परिचय पाते हैं। यहाँ हम उनकी उर्दू शब्दावली और इस्लाम से सम्बंधित परिकल्पनाओं से भी अवगत होते हैं। विवेकसार की शैली से अलग, गीतावली की रचना विभिन्न प्रकार के गाये जा सकने वाले रागों के पदों में हुई है जैसे कि पद सिंध भैरवी, शब्द पीलुका, शब्द गौरी आदि। यहाँ कुछ उदाहरण उपयुक्त रहेंगे।

पहला उदाहरण एक शब्द है जहाँ बाबा कीनाराम अपने अघोर गुरु बाबा कालूराम के बारे में बताते हैं, और एक साधु के साधनामय जीवन का उद्धरण देते हैं। इस पद की इति वे एक प्रचलित लोकोक्ति के साथ करते हैं –

कीना कीना सब कहै, कालू कहै न कोय ॥
कीना कालू एक भये, राम करै सो होय ॥
कोठा अटारी को काम नहीं, छोटी सी झोपड़ी एक टटी का ॥
शाल दुशाला से काम नहीं, काला सा कम्बल पांच पटी का ॥
लोटा थाली से काम नहीं, छोटा पुरवा एक मटी का ॥
कीनाराम फकीरी सहज नहीं, पग धरतै निकलत दूध छठी का ॥
(कीनाराम 1987, 3 शब्द)

अपने वैष्णव गुरु, बाबा शिवाराम, के यहाँ से प्रस्थान करने के बाद बाबा कीनाराम भ्रमण करते हुए गुजरात में गिरनार पहुँचे। कुछ लोगों का मत है कि वहीं गुरु दत्तात्रेय ने उन्हें अघोर परम्परा की दीक्षा दी। कुछ अन्य का मानना है कि उन्हें काशी जाने की आज्ञा हुई जहाँ गुरु दत्तात्रेय नें उन्हें बाबा कालूराम के रुप में दीक्षा दी। एक बार इस परम्परा में दीक्षित हो जाने के बाद बाबा कीनाराम किसी अघोरवेषधारी उन्मत्त पुरुष की भाँति विचरण करने लगे। वे शब्द पीलुका में लिखते हैं –

जग लेखवाँ हम बाउर भैलीं ॥
जात कुटुम सब ताना मारैं, छाड़ि परिवार फकीर संग खैलीं ॥
करबा कोपीन अरसैन कुबरिया, मथवा में तिलक अजब रुप धैलीं ॥
कर परतीत नाम दुइ अक्षर, ताहिके भरोसवाँ तिरत नाहि कैलीं ॥
रामकिना बौराह राम के, पावल राम नाम धन थैली ॥
(कीनाराम 1987, 3 शब्द पीलूका)

बाबा कीनाराम के भोजपुरी पद में माधुर्य भी है और सत्य भी। लेकिन प्रतीत होता है कि जब तक उनके भक्त उनकी चाह में बावरे न हो जाएँ, तब तक राम उन्हें नहीं मिलते। इसलिये संत साहित्य में अन्य संतों ने भी अपने बावरे होने का उल्लेख किया है। उदाहरण के लिये कबीर कहते हैं, 'जउ मैं बउरा तउ राम मोरा' (दास 2000, पदावली 343)। बाबा कीनाराम के काव्य में झलकती ख़ास बात यह है कि उनकी भोजपुरी पदावली में किसी प्रकार का अधिकार भाव न होकर एक बच्चे की माँ के प्रति करुण पुकार का भाव है, जो कभी यह, कभी वह, हर प्रयास करता है कि उसका इष्ट उसे मिल जाय।

अब उनकी विधि-निषेध से परे की कविता शैली को भी देखते हैं जिसमें सांध्यभाषा का पुट है, क्योंकि इस पद में एक लोक-व्यवहार का अर्थ होने के साथ ही आध्यात्मिक क्रिया का भी अर्थ छिपा है। ध्यान की अवस्था का गाँजा पीने के रूपक से कथन आकर्षक है **[तालिका 2]** –[49]

तालिका 2 गाँजा पीने का रूपक

सं.	मूल पद	सम्भावित शाब्दिक अर्थ	सम्भावित आध्यात्मिक अर्थ
1.	गांजा पियत सदा सुख दुख दलि अमल जनाई॥*	नियमित गाँजा पीने से सुख-दुख भुलाकर व्यक्ति मादकता में मग्न रहता है।	ध्यानावस्था में सुख-दुख के द्वैतभाव से परे उस अंत रहित पवित्रता का ज्ञान होता है।
2.	सहज सुमति रस धूम लेइकैं, कुमति कटुक तजु भाई ॥	शांतचित्त से धुएँ का गहरा कश खींच मन के कटु विचारों का त्याग करें।	सहजानंद बुद्धि का दम भर कर मन की कुटिल मानसिकता को जाने दें।
3.	हुक्का काया मधि डंठा धरि, चीलम सिद्धि धराई ॥	हुक्के का नैचा मध्य में लगाकर उसपर अच्छी तरह जगाई हुई चिलम धरें।	काया-रूपी हुक्के में मेरुदण्ड रूपी डंठे को सीधा करें, उसपर आध्यात्मिक सिद्धि की चिलम धरें।
4.	गांजा ज्ञान आनि दृढ़ता धरि, परम सुप्रेम चढ़ाई ॥**	गाँजे का अच्छा ज्ञान रखते हुए उसे चिलम में प्रेम से दबा कर भरें।	सहजानंद ज्ञान के अनुग्रह को दृढ़ता से धरें और प्रेम से अर्पण करें।
5.	नीर विचार सार करि राखत, पाँतहि ते बिलगाई ॥	उसमें अनुपात से ही पानी भरें, नैचे में उस पानी को न आने दें।	चिंतन के सत्त्व को द्वैतभाव वाले विचारों से मुक्त कर पास रखें।
6.	अमी सार सार को लीजै, बीज बिकार बिहाई ॥	अब उस मादकता का सूक्ष्म आनंद लें, विकार वाले बीजों से उसे अलग रखें।	मन-बुद्धि के विकारों से मुक्त रहते हुए उस सत्त्व का आनंद लें।
7.	तत्व तमाखू मेरि शब्द गुरु, सरस सदा सुखदाई ॥	तम्बाकू के तत्त्व को अपने गुरु के ध्यान के साथ मिलाएँ, ऐसा करना सदा लाभप्रद होता है।	तम्बाकू, यानी आत्म-विचार को गुरु द्वारा दिये गए शब्द के साथ मिलाकर उस सदैव सुख देनेवाले रस में दत्तचित्त रहें।
8.	राखी चिलम अनल ब्रह्म गुन, खात मगन मन लाई ॥	अब उसका अच्छी तरह सुलगती अग्नि से परिचय कराएँ कि जिसका सेवन करते ही मन मगन हो जाए।	अब इस पर ब्रह्मअनुभूति की चिलम चढ़ाएँ, जिस अवस्था का अनुभव होते ही मन मगन हो जाता है।
9.	खैंचत बार बार नाम मुख, अमल विमल उर छाई ॥	बार-बार इस धुएँ को अंदर खींचने से उसकी मादकता सर्वव्यापी हो जाएगी।	बार-बार इस शब्द (मंत्र) का श्वास के साथ स्पंदन पूरे हृदय को आप्लावित कर देता है।
10.	सुरति सरुप लगन मात्यो मन, तजु रस विषैं घिनाई ॥***	सुर्ती (तम्बाकू) को ध्यान से मन लगाकर बनाएँ, उसमें से सभी अनपेक्षित पदार्थों को निकाल दें।	मन-वश कर गुरु के शब्दों की सुरति-स्मृति धारण कर अवांछित विषय-वासना का त्याग करें।
11.	निस बासर आनंद सती गृह, मीन रेनु बल पाई ॥	अब एक दत्तचित्त गाँजा सेवक की तरह आपको आनंद मिलेगा, आपकी आत्मा को भी प्रकाश का अनुभव होगा।	इस प्रकार निष्ठावान भक्त के घर अनंत आनंद रहेगा, उसकी मन-बुद्धि में ज्ञान-प्रकाश आलोकित होगा।
12.	रामकिना यह पिए साधु कोई, जेहि नहि अमल जनाई ॥	कीनाराम कहते हैं यह तरीका है उस साधु के द्वारा धूम्रपान करने का, जो अभी तक इन मादक वस्तुओं से अनजान है।	कीनाराम कहते हैं कि यह तरीका है उस साधु द्वारा नाम-पान करने का, जो अभी उस पवित्रता के अनुभव से अनभिज्ञ है।

* शास्त्री 1959, 133 पाद टिप्पणी 103 में यहाँ 'जनाई' के स्थान पर 'बनाई' शब्द मिलता है

** शास्त्री 1959, 133 पाद टिप्पणी 103 में यहाँ 'चढ़ाई' के स्थान पर 'बढ़ाई' शब्द मिलता है

*** शास्त्री 1959, 133 पाद टिप्पणी 103 में यहाँ 'मात्यो' के स्थान पर 'मायों' शब्द मिलता है

स्रोत : कीनाराम 1987, 4 शब्द दंडक; आठवीं पंक्ति शास्त्री 1959, 133 पाद टिप्पणी 103 से है

यदि मात्र शाब्दिक अर्थ को देखें तो लगता है बाबा गाँजे का रसास्वादन करने के नुस्खे बता रहे हैं। लेकिन इसका आध्यात्मिक अर्थ कुछ और ही निकलता है!

49 शास्त्री 1959, 133 पाद टिप्पणी 103 में उद्धृत इस कविता में एक अतिरिक्त पंक्ति मिलती है जो श्री सर्वेश्वरी समूह द्वारा प्रकाशित गीतावली के संस्करणों में नहीं पायी जाती - "राखी चिलम अनल ब्रह्म गुन, खात मगन मन लाई ॥" लेखक ने इस पंक्ति को यहाँ यथा-स्थान संलग्न कर दिया है।

बिना एक आध्यात्मिक शब्दकोश के इस पद को समझना कठिन है। लेकिन हम इन शब्दों के आध्यात्मिक अर्थों को यहाँ दे रहे हैं – गाँजा = ध्यान/मंत्र/ईश्वर स्मृति; अमल = पवित्रता/दत्तचित्त होना; सहज सुमति = प्राकृतिक/विरागी बुद्धि (या सहज मार्ग का ज्ञान); कुमति कटुक = खिन्न मन/ चंचल मन/द्वैतभाव वाली बुद्धि; हुक्का = काया; डंठा = मेरुदण्ड; सिद्धि = आध्यात्मिक सफलता; गाँजा ज्ञान = ध्यान जनित आध्यात्मिक अनुभव; नीर विचार सार = चिंतन का सत्त्व; पाँतहिं = चंचल विचारों की शृंखला; अमी = दत्त-चित्तता/रम जाना; सार = सत्त्व; बीज बिकार = द्वैतभाव वाली बुद्धि में आने वाले विचार; तमाखू = आत्म-विचार/आत्म-बुद्धि; मेरि = मिलाना; सुरति = गुरु के शब्दों की स्मृति; सती = निष्ठावान भक्त; मीन = मन/ बुद्धि। इस सूची की सहायता से हम इस पद के आध्यात्मिक अर्थ को समझ सकते हैं।

शब्द गौरीका के पद में हम बाबा कीनाराम द्वारा लोगों के पथभ्रमित व्यवहारों की भर्त्सना देखते हैं जो बाबा कीनाराम के साहित्य में यदा-कदा ही देखने में आती है। इसमें भी वे अंधे और बहरे वाली लोकोक्ति का प्रयोग करते हैं, और वह मुहावरा भी, जिसमें जो स्वयं नहीं जानता वह औरों को ज्ञान बाँटने का दम्भ भरता है।

संतों भाई भूल्यो कि जग बौरानों यह कैसे कर कहिये ।
याही बड़ो अचम्भो लागत समुझ समुझ उर रहिये ॥
कथै ज्ञान असनान यज्ञ ब्रत उर में कपट कमानी ।
निकट छांड़ कर दूर बतावत सो कैसे पहचानी ॥
हाड़ चाम अरु मांस रक्त मल जांच्यो है अभिमानी ।
ताहि खाय पंडित कहलावत वह कैसे हम मानी ॥
पढ़ै पुरान कोरान वेदमत जीव दया नही जानी ।
औरन को कहि कहि समुझावत आप मरम नहि जानी ॥
जीव भिन्न भाव कर मारत पूजत भूत भवानी ।
वह अदृष्टि नहि सूझै मन में बहुत रिसानी ॥
अंधहि अंधा डगर बतावैं बहिरहि बहिरा बानी ।
रामकिना सतगुरु सेवा बिनु भूलि मरयो अज्ञानी ॥
(कीनाराम 1987, 5-6 शब्द गौरीका)

बाबा कीनाराम के सर्व-समावेशी आचार को देखते हुए जान पड़ता है कि इस पद को गीतावली में सम्मिलित करने के पीछे भक्ति-संतों की अन्य परम्परा वालों पर टीका करने की परिपाटी है, जिसका आरम्भ गोरखनाथ से हुआ, कबीर की वाणियों में पुष्ट हुआ, दादूपंथ के सुंदरदास के शब्दों में विपुल बना, और बूँद-बूँद बाबा कीनाराम की रचनाओं में भी टपक पड़ा। इस पद में वे बिना किसी एक परम्परा का नाम लिये समान रूप से उन सभी पर टिप्पणी करते हैं जो भ्रम पैदा करते हैं।

गीतावली में ही हम बाबा कीनाराम के सूफ़ी अभिव्यक्तियों वाले उर्दू शब्दों को पाते हैं जो शायद उस समय लिखे गए हों जब वे, कथाओं के अनुसार, सुदूर पश्चिम बलूचिस्तान में हिंगलाज तक की यात्रा कर रहे थे। रेखता पद में वे लिखते हैं –

साँई दा नाम जपंदा यारों काम सख्त मुश्किल का है ।
चशमों दी चशम हजूर नूर सोई चौक प्रेम दाना दिल का है ॥
हाजिर हर वक्त कस्द दिल भीतर रहनि रहंदा का है ।
आली दरबेश महरमी हालों का किनाराम बंदा का है ॥
(कीनाराम 1987, 7 रेखता (1))

पहली पंक्ति से यह तो स्पष्ट है कि ईश्वर का नाम जपना कोई सहज कार्य नहीं है। यह तो उनके प्रति प्रेम में विह्वल हृदय ही उनका प्रकाश और आँखों में उनकी छवि के बसने का कारण होता है। उनकी स्मृति हर पल हृदय में बनी रहती है। भ्रमणशील दरवेशों की ही तरह कीनाराम का हृदय भी उनकी याद की पीड़ा में टीसता रहता है।

एक अन्य पद देखिये जो पहले की ही तरह मार्मिक है –

कहर कुफ़रान हैवान का काम है, दर्द की राह तू खोज काज़ी।
हक्क हादी सबै हज्ज साहेब अली, हुकुम दस्तूर की तबलबाज़ी॥
हवा के महल में गहल क्यों ह्वै रहौ, प्रेम है असल का नकलबाज़ी॥
यादगारी गुज़र शुकुर मुश्ताक दिल, रामकिना अलहजूर महराजी॥
(कीनाराम 1987, 11-2 शब्द)

ओ काज़ी, विध्वंस करना, धर्म विहीन आचरण करना, यह सब तो हैवान का काम है, तू तो औरों की पीड़ा समझने की राह का अनुसंधान कर। यह तो वही परमात्मा है जिनकी इच्छा का ढोल बजता है, जो उस परम तीर्थ के केंद्र में स्थित हैं। हवा से भरी हुई इस दुनिया में इतना भेद-भाव क्यों, यह तो प्रेम ही है न जिसमें वह सत्य झलकता है। कीनाराम का उनकी स्मृति में दुखता हृदय फिर भी उनका शुक्रगुज़ार है, कि उनकी याद में उन्हीं की दुनिया में उनका समय बीतता है।

ऐसे और भी पद हैं लेकिन उदाहरण देने के लिये ये पर्याप्त हैं। यह तो साफ़ हो ही जाता है कि गीतावली, जिसमें निर्गुण ब्रह्म का बखान है, भोग-विलास के जीवन के प्रति चेतावनी है, अध्यात्म भाव की एक से अधिक भाषाओं में अभिव्यक्तियाँ हैं, बाबा कीनाराम की सब को अपने में समाहित कर लेने की प्रवृत्ति का प्रतिनिधित्व करती है, ठीक उसी तरह जैसे कि विवेकसार में वर्णित बाबा कीनाराम के गुरु दत्तात्रेय अपने में सब का समावेश कर लेते हैं।

3.3 एक कविता स्थल में लगे एक चित्र से

इस समीक्षा के अंत में हम गीतावली से उद्धृत कविता की शैली में एक और कविता प्रस्तुत करते हैं। हालाँकि यह कविता बाबा कीनाराम की प्रकाशित रचनाओं में नहीं है, किंतु स्थल के जीर्णोद्धार के पहले तक यह कविता बाबा कीनाराम के एक रेखाचित्र के नीचे लिखी हुई दिख जाती थी। हमें प्रतीत होता है कि यह कविता बाबा कीनाराम द्वारा ही लिखी है, परंतु नाम न दिया होने से पूर्ण विश्वास के साथ यह कह पाना कठिन है। कविता एक औघड़ संत की आत्मवर्णित छवि और उनके जीवन पर हल्का सा प्रकाश डालती है। यहाँ भी, सांध्यभाषा की परिपाटी के अनुसार यदि बायें कोष्ठक में प्रस्तुत कविता के शब्दों को देखें तो एक प्रकार का अर्थ निकलता है। लेकिन उन्हीं शब्दों को आध्यात्मिक शब्दावली के माध्यम से देखें, जैसा कि दायें वाले कोष्ठक में प्रस्तुत है, तो इसका कुछ और ही अर्थ निकलता है –

तालिका 3 बहुरि विप्र की खोपरी खोजि

मूल कविता	**अर्थ एवं विशिष्ट आध्यात्मिक शब्दावली**
नर अस्थिमाल, गल में विशाल*	गले में अस्थियों की एक बहुत बड़ी माला पहने हुए हैं।
भस्मश्मशान, सब अंगवान	शरीर के सभी अंगों में श्मशान से उठाई भस्म का लेपन है।
दृग अति अरक्त, मानों हैं तृप्त।	आँखें लाल हो रही हैं, मानों अपनी मदमस्त अवस्था में पूर्णतया तृप्त हों।
तासों कहों अपनी रीति,	इसलिये मैं अपनी रीति के बारे में वर्णन करता हूँ।
मोसों रहत सबै भयभीत।	सभी मुझसे डरे हुए रहते हैं।
होम अग्नि निशिदिवसधाम,	हमारे यहाँ रात दिन यज्ञ की अग्नि प्रज्वलित रहती है।
पावक बुझ न आठौ याम ॥	आठों पहर में कभी भी यह अग्नि बुझती नहीं है। चौबीसों घंटे एक यज्ञ चलता रहता है। (यह पावक प्राण-संचरण है)।
तामंह मृग खग मत्स्य मांस	उस अग्नि में मृग (जिसे संस्कृत में बहुधा पशु का भी द्योतक माना जाता है, लेकिन यहाँ मंत्र के रूप में प्रयुक्त किया गया है), पक्षी (श्वास-प्रश्वास की क्रिया), मछली (चेतना-प्रवाह, जैसे इड़ा और पिंगला के माध्यम से) और माँस (आत्मानुशासन और जिह्वा पर अंकुश)
मदिरा सहित होम है तास।	तथा मदिरा (आमतौर पर मादक पेय, यहाँ आत्मज्ञान के रसास्वादन का आनंद) की आहुति होती रहती है।
बहुरि विप्र की खोपरी खोजि	कहीं से किसी ब्राह्मण की खोपड़ी लाकर (यहाँ समाधि-चित्त अथवा आत्मबुद्धि का द्योतक)...
भरि-भरि मदिरा पीवत रोज ।	उसको पूरी तरह से भरकर रोज़ यह मदिरा (पूर्ण समाधि अवस्था) का सेवन करना चाहिये।
*मूल कविता में पहली पंक्ति में 'अस्थिमल' शब्द है जो लेखक की समझ से वर्तनी की त्रुटि मात्र है	
स्रोत : बाबा कीनाराम स्थल, वाराणसी में लगे एक चित्र से 2013	

प्रतीत होता है कि यहाँ बाबा कीनाराम अपने ही रूप का वर्णन कर रहे हैं **[चित्र 12]**। गले में मानव-हड्डियों की माला और शरीर के हर अंग पर श्मशान की भस्म का लेपन तो श्मशान में रहने वाले शैवमत औघड़, अवधूत या तंत्र साधक की छवि से मिलता है। लाल आँखें भी मादक द्रव्य या समाधि-जनक ध्यानावस्था, दोनों

का द्योतक हो सकती हैं। लेकिन जब वे अपनी भयभीत कर देनेवाली जीवनशैली का वर्णन करते हैं तब हमें पुन: साधना की रहस्यमयी शब्दावली का आश्रय लेना पड़ता है। बिना ऐसी रहस्यमय शब्दावली के हम कह सकते हैं कि बाबा कीनाराम कह रहे हैं उनके घर में रात-दिन हर क्षण यज्ञाग्नि प्रज्वलित रहती है, कभी नहीं बुझती है, और उसमें निरंतर हिरण, पक्षियों और मछली की आहुति मद्य के साथ पड़ती रहती है। इस विवेचना में अंतिम दो पंक्तियाँ इस यज्ञाहुति से असम्बद्ध सी लगती हैं जहाँ वे कहते हैं कि एक विप्र का कपाल खोजकर उसमें मदिरा भरकर नित्य पान करना चाहिये। इसलिये हमें अंत की चार पंक्तियाँ सांध्यभाषा युक्त लगती हैं। क्योंकि गूढ़ार्थ देखने पर हम पाते हैं कि यज्ञाग्नि प्राण अथवा वैश्वानर का प्रतीक है, जो अग्नि जीवन रहते कभी नहीं बुझती। यहाँ मृग मंत्र का द्योतक लगता है, खग श्वास का, और मत्स्य पुन: मन-बुद्धि अथवा प्राण-वायु का। मदिरा उस ध्यान का योतक है जिसमें साधक खो जाता है, और विप्र की खोपड़ी से मदिरा पीने का रूपक किसी ब्राह्मण का कपाल न होकर अपने ही अंतर में एक विज्ञ-पुरुष का ज्ञान या समाधि-बोध जागृत करने का आग्रह लगता है। यह साधना इस प्रकार के योगी की काया में अनवरत चलती रहती है, और यही बाबा कीनाराम का स्वरूप है, ऐसा कहते हुए वे प्रतीत होते हैं।

3.4 बाबा कीनाराम और पूर्ववर्ती परम्पराओं का साहित्य

विवेकसार में बाबा कीनाराम ने अपने गुरु संत शिवाराम से सीखे तुलसी प्रेरित छंद ज्ञान का प्रयोग काया परिचय, शरीर में ही ब्रह्माण्ड का अवलोकन, जिसके माध्यम से सर्वज्ञ समाधि की ओर अग्रसर हुआ जा सकता है, आदि सूक्ष्म विश्लेषण के लिये किया है। जिस दर्शन का वे प्रतिपादन करते हैं वह नवीन नहीं है, बल्कि बहुत ही पुराना है जिसे उपनिषदों के कथन में भी पाया जा सकता है, लेकिन ख़ूबी यही है कि बाबा कीनाराम इस बात को स्वयं कहते हैं कि उन्होंने अपने कथन का संदेश सोलहों पुराणों, स्मृतियों, वेदांत और अन्य कई शास्त्रों से लेकर उन सभी का निचोड़ विवेकसार में दिया है।[50] अवधूत संन्यासियों का उल्लेख, उनकी अभेद की विचारधारा और समवर्तिता का व्यवहार, उनका अपने 'आत्म' में ही ब्रह्म का दर्शन करना जिसे प्राय: 'सोऽहं' भाव एवं 'सोऽहं' मंत्र के रूप में अभिव्यक्त किया जाता है, सरलता से उपनिषदों के उस समूह में, जिसे विद्वद्गण संन्यास उपनिषदों की संज्ञा देते हैं, देखे जाते हैं। इन उपनिषदों का काल ख़्रीस्ताब्द की सबसे पहली शताब्दियों में निर्धारित किया जाता है (ऑलिवेल 1992, 10)। यह हम देख सकते हैं कि बाबा कीनाराम ने अनेक स्रोतों का अध्ययन किया हुआ है क्योंकि उनके पद्यों में हमें कुछ गोरखनाथ द्वारा सम्पादित बातें मिल जाती हैं, कुछ जो कबीरदास की बानियों से मेल खाती हैं, और कुछ की समानता तुलसीदास की रचनाओं में भी मिल जाती है। गोरखनाथ की रचनाओं में स्वयं अन्य शास्त्रों, जैसे शिव संहिता (देखें मैलिन्सन 2007), की विचरधारा परिलक्षित होती है। हमारा विचार है कि उस समय के संत समाज में इन संतों की उक्तियाँ बहुत प्रचलित रही होंगी, इसलिये बाबा कीनाराम को भी उनका ज्ञान होना आवश्यक रहा होगा। जैसा कि ओर्सीनी संत मलूकदास के संदर्भ में लिखती हैं –

> ... मलूकदास की कविता में पंद्रहवीं शताब्दी के अवध के एक सूफ़ी 'अब्द-अल कुद्दूस गंगोही के फारसी से 'अनूदित' हिंदवी में लिखे एक पद का शब्दश: अनुकरण है.. स्पष्ट है कि मलूकदास द्वारा उन शब्दों का प्रयोग करने से पहले ही वे कई बार दुहराए जा चुके थे और उनमें बहुत पहले के वाचकों और वार्तालापों में परिवर्तन की अस्पष्ट प्रतिध्वनि की रेखाएँ पड़ चुकी थीं... (2023, 99)

3.4.1 नाथ परम्परा

कुछ ऐसा ही कारण होने के अतिरिक्त अघोर और नाथ परम्पराओं के अंतरंग सम्बंध के कारण भी जहाँ योग दर्शन का प्रतिपादन शताब्दियों से चला आ रहा है, एक सीमा तक विवेकसार की विषयवस्तु और कुछ हद तक शब्दावली भी, नाथ साहित्य से बहुत मेल खाती है। जिस अवधूत मत की व्याख्या बाबा कीनाराम विवेकसार में करते हैं, वह नाथ परम्परा से भी अविच्छिन्न रूप से सम्बंधित है। यह गोरखनाथ की कही जानेवाली सिद्ध-सिद्धांतपद्धति में स्पष्ट झलकता है। इस ग्रंथ में छह अध्याय या उपदेश हैं, और इसका छठा उपदेश अवधूत योगी के विषय में है। इस अध्याय में अवधूत योगी के वेष, चिह्न और अवस्था, सब का विस्तार से वर्णन किया गया है (देखें श्रीवास्तव 1981)। इतना ही नहीं, सिद्धसिद्धांतपद्धति में पिण्ड-ब्रह्माण्ड समन्वय का अच्छा निरूपण है, जैसा कि पी.सी. दीवानजी ने इस विषय पर कल्याणी मल्लिक की पुस्तक की प्रस्तावना में लिखा

50 देखें विवेकसार फल-स्तुति सं. 267।

है (मल्लिक 1954, vi)। इस विषय का निरूपण विवेकसार में भी विस्तार से किया गया है। हालाँकि इस पिण्ड-ब्रह्माण्ड समन्वय को ऐतिहासिक रूप से न केवल उपनिषदों में भी पाया जाता है, अपितु शिव संहिता में भी इसका अच्छा वर्णन है (2.1-4, 5)। यहाँ ऐसा प्रतीत होता है कि बाबा कीनाराम नाथ साहित्य में इस विषय की विवेचना से भली-भाँति परिचित थे। संस्कृत में रचित सिद्धसिद्धांतपद्धति के छह अध्यायों या उपदेशों के शीर्षक हैं – पिण्डोत्पत्तिः (शरीर का उद्गम), पिण्डविचारः (शरीर की चर्चा), पिण्डसंवित्तिः (शरीर का ज्ञान), पिण्डाधारः (शरीर का मूल आधार), पिण्डपदयो समरसकरणम् (शरीर का उस परम सत्ता से योग), और जैसा कि हमने ऊपर पढ़ा, अवधूतयोगीलक्षणम् (अवधूत योगी के लक्षण) (मल्लिक 1954, 35; श्रीवास्तव 1981, अनुक्रम)। इन उपदेशों में प्रथम उपदेश में अव्यक्त परब्रह्म द्वारा इच्छाशक्ति से सृष्टि का उद्भव, उससे पिण्ड का आविर्भाव और उसमें 'सोऽहं' भाव की आवृत्ति निरूपित है। दूसरे उपदेश, पिण्डविचार में, नौ चक्र, सोलह आधार, तीन लक्ष्य तथा पंच व्योम इत्यादि की चर्चा है। तीसरे उपदेश में काया परिचय और शरीर में ही समस्त ब्रह्माण्ड का अवलोकन वर्णित है। चौथे उपदेश में शक्ति, शिव, कुल, अकुल, परमपद की चर्चा है। पाँचवें उपदेश में पिण्ड को कैसे परमपद में समाहित किया जाए, यह व्याख्या है। और छठा अध्याय, जैसा कि शीर्षक से लक्षित है, अवधूत योगी के रूप, चरित्र, व्यवहार आदि का निरूपण करता है।

इनमें से उपदेश एक, तीन और छह हमारे लिये प्रासंगिक हैं। बाबा कीनाराम विवेकसार में जिस सोऽहं मंत्र के विषय में बताते हैं उसका एक पूर्वाभास पिण्डोत्पत्ति उपदेश के सोऽहं भाव में मिलता है। दूसरे उपदेश में जिसमें चक्रों आदि की विस्तृत नाथ शब्दावली है वैसा कुछ भी विवेकसार में नहीं है। तीसरे उपदेश में, जो पिण्ड-ज्ञान के विषय में है, भौगोलिक और ब्रह्माण्डिक अवयवों की शरीर में न केवल एक विस्तृत सूची दर्शाता है, यह भी इंगित करता है कि वे शरीर में कहाँ-कहाँ स्थित हैं। विवेकसार में इस प्रकार का विस्तृत वर्णन नहीं है। बाबा कीनाराम यह तो बतलाते हैं कि ये वस्तुएँ शरीर में विद्यमान हैं, किंतु उनका वे अपनी भाषा में बहुत ही सरल और संक्षिप्त निरूपण करते हैं। उदाहरण के लिये सिद्धसिद्धांतपद्धति में स्थूल शरीर में ही न केवल सप्तपाताल, अनेक लोक, सप्त द्वीप, सप्त समुद्र, नवखण्ड, अष्टकुल पर्वत, नौ नदी तथा उपनदियाँ, नक्षत्र आदि की विस्तृत सूची है, बल्कि यह भी निर्दिष्ट है कि कौन सा अवयव किस स्थान में विद्यमान है, जैसे पैर के अंगूठे में पाताल, अंगूठे के अग्रभाग में तलातल, पादपृष्ठ में रसातल, गट्टे में सुतल, जाँघ में वितल आदि (श्रीवास्तव 1981, 93)। बाबा कीनाराम इतने विस्तार में बिल्कुल नहीं जाते हैं। मात्र स्थूल-पिण्ड के विषय में लिखते हुए वे "सप्त पताल पिण्ड मो बासा" (देखें विवेकसार चौपाई 83) कहकर आगे बढ़ जाते हैं। चौथे उपदेश की परिकल्पनाएँ भी विवेकसार में नहीं हैं। पाँचवें उपदेश में वर्णित ज्ञानप्राप्ति में केवल गुरु की महत्ता दोनों ही ग्रंथों में है और विवेकसार में कहते हैं कि मेरे गुरु ने ही मेरे पिण्ड में समस्त ब्रह्माण्ड को व्यक्त करा दिया। छठे उपदेश की विषयवस्तु समानता, जहाँ अवधूत के लिये अभेद सिद्धांत का जीवन में व्यवहार करने की शिक्षा, और एकांत में अपने आप में खोये-खोये से रहने की जीवन शैली बताई गई है, दोनों ग्रंथों में मिलती है। विषयवस्तु में इस प्रकार की समानता इतनी अधिक घुली-मिली परम्पराओं के संत कवियों के साहित्य में पाना कोई आश्चर्य की बात नहीं है, अपितु आश्चर्य तब होता यदि उनमें कुछ भी मेल न होता। उदाहरण के लिये, हमने शिव संहिता का नाम ऊपर लिया है। मैलिन्सन (2007, x) के अनुसार इस ग्रंथ की तिथि तेरहवीं से पंद्रहवीं शताब्दी तक मानी जा सकती है क्योंकि इसमें तेरहवीं शताब्दी के दत्तात्रेय योग शास्त्र के कुछ पद हैं, और क्योंकि सत्रहवीं शताब्दी के कुछ लेखकों ने इसका उद्धरण दिया हुआ है। इसमें भी, संस्कृत में, स्थूल शरीर में ब्रह्माण्ड के इन अवयवों, जैसे पर्वत, नदी, द्वीप, सागर, नक्षत्र आदि सब का होना वर्णित है।[51]

हम यह तो नहीं कह सकते कि बाबा कीनाराम ने सिद्धसिद्धांतपद्धति की किसी प्रति को देखा था या नहीं, लेकिन उसमें वर्णित विषयवस्तु से वे भली-भाँति परिचित थे। यदि गहराई से देखें तो विवेकसार में निरूपित सिद्धांत न केवल संस्कृत में रचित सिद्धसिद्धांतपद्धति का हिंदी भाषा में सरलीकरण माना जा सकता है, अपितु उन्हीं बातों का गागर में सागर सरीखे सारांश प्रस्तुत करता है। इसी कारण हो सकता है कि विवेकसार के कतिपय दोहे गोरखनाथ के कहे जाने वाले मछिंद्र-गोरख बोध की कुछ पंक्तियों से भी बहुत समानता रखते हैं। मछिंद्र-गोरख बोध को छोटे में गोरख बोध (काल 14वीं शताब्दी; देखें मल्लिक 1954, 32) भी कहा जाता है, और इसका संकलन पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल ने गोरख-बानी में किया है। कुछ इसी कारण से इन ग्रंथों में वर्णित सृष्टि-रचना वर्णन की काफी समानता कबीरदास की रमैनियों में भी मिलती है। हम इस बात से अनभिज्ञ हैं कि बाबा कीनाराम ने गोरख-बोध की किसी प्रकाशित प्रति का पाठ किया या ये सूक्तियाँ अन्य साधुओं के साथ उन्होंने भ्रमण-रत होकर सुनीं, परंतु संरचना की दृष्टि से गोरखनाथ का मछींद्र-गोरख बोध और विवेकसार, दोनों ही रचनाएँ गुरु-शिष्य संवाद पर आधारित हैं। दोनों ही ग्रंथ बताते हैं कि वे 'अवधूत मत' – अवधूत दर्शन – का प्रतिपादन कर रहे हैं, और दोनों ही स्वकाया में ब्रह्माण्ड के अवलोकन पर

51 देहेस्मिन् वर्तते मेरुः सप्तद्वीपःसमन्वितः । सरितः सागराः शैलाः क्षेत्राणि क्षेत्रपालकः ॥ ऋषयो मुनयः सर्वे नक्षत्राणि ग्रहास्तथा । पुण्यतीर्थानि पीठानि वर्तते पीठदेवताः ॥ सृष्टिसंहारकर्तारौ भ्रमन्तौ शशिभास्करौ । नभोवायुश्च वह्निश्च जलं पृथ्वी तथैव च ॥ त्रैलोक्ये यानि भूतानि तानि सर्वाणि देहतः । । मेरुं संवेष्ट्य सर्वत्र व्यवहारः प्रवर्तते । जानाति यः सर्वमिदं स योगी नात्र संशयः ॥ (शिवसंहिता 2.1-4)। ब्रह्माण्डसंज्ञके देहे यथादेशं व्यवस्थितः । मेरुशृंगे सुधारश्मिर्बहिरष्टकलायुतः ॥ (शिवसंहिता 2.5)।

बल देते हैं। यहाँ कुछ उदाहरण उपयोगी रहेंगे। गोरख-बोध के लिये हमने पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल की गोरख-बानी से उद्धरण लिये हैं –

1. बाबा कीनाराम गुरु दत्तात्रेय से पूछते हैं –

> मन सो कौन कहिय मोहि स्वामी । सब प्रकार तुम अंतरजामी ॥ चौपाई 102॥
> पवन सो कवन निरंतर कहिये । जेहि तें युक्ति यत्न सब लहिये ॥ चौपाई 103॥
> कौन शब्द सो मोहिं समुझावो । निर्भय मारग जानि लखावो ॥ चौपाई 104॥
> प्रान कौन तसु हेतु विचारी । सो सुधि कहिय मोह तम हारी ॥ चौपाई 105॥
> (विवेकसार 1975, विज्ञान अंग)

> स्वामी,आप तो अंतर्यामी हैं, कृपा कर बताइये कि मन कौन है? निरंतर चलने वाला पवन कौन है जिससे सभी ज्ञान और कर्म सम्पन्न होते हैं? यह समझाइये कि शब्द कौन है, ताकि मैं निर्भयता प्रदान करनेवाले मार्ग का अनुसरण कर सकूँ। आप तो मोह-माया के अंधकार का विनाश करने वाले हैं, कृपया बताइये कि प्राण कौन है?

जबकि गोरख बोध में गोरख मछिंद्र से पूछते हैं –

> स्वामीजी मन का कौन रुप, पवन का कौन आकार । दंम की कौन दसा, साधिबा कौन द्वार ॥
> (बड़थ्वाल, 1960, 187 संख्या 7)

> स्वामी जी मन का रुप क्या है, पवन का आकार क्या है, जीवनदायी श्वास की क्या स्थिति है, और किस द्वार को साधने से उन पर नियंत्रण किया जा सकता है?

2. इन प्रश्नों का उत्तर उनके अपने-अपने गुरु देते हैं। कीनाराम को उत्तर मिलता है –

> मन चंचल गुरु कही दिखाई । जाकी सकल लोक प्रभुताई ॥ चौपाई 113॥
> पवन स्वाँस यह बड़ो संजोगा । सो तौ सब दिन रहै वियोगा ॥ चौपाई 114॥
> शब्द ज्योति जग सुन्य प्रकासा । समुझत मिटै कठिन भव फाँसा ॥ चौपाई 115॥
> प्रान निवृत्ति सदा तेहि जानौ । भाव अभाव न एकौ मानौ ॥ चौपाई 116॥
> (विवेकसार 1975, विज्ञान अंग)।

> गुरु ने बताया भी और दिखला भी दिया कि मन अस्थिर है लेकिन फिर भी दुनिया में उसी का बोलबाला है। पवन जो है यह श्वास से अभिन्न रुप से जुड़ी हुई है, फिर भी वह हर अवस्था में निस्पृह बनी रहती है। शब्द तो वही ज्योति है जिससे शून्य के अंधकारमय विस्तार में प्रकाश का संचार हुआ। इस बात को समझ लेने से व्यक्ति भवसागर के पार जा सकता है। प्राण तो वही श्वास है जो सर्वदा मुक्त रहता है क्योंकि वह सभी इच्छाओं, आवश्यकताओं से परे रहता है।

गोरख को उनके गुरु इस प्रकार उत्तर देते हैं –

> अवधू मन का सुंनि रुप, पवन का निरालंभ आकार । दंम की अलेष दसा, साधिबा दसवैं द्वार ॥ (बड़-थ्वाल 1960, 187 संख्या 8)।

अवधू, मन का रुप तो शून्य है, पवन (श्वास) अपने ऊपर ही निर्भर रहता है, प्राण की दशा अलेख, यानी अवर्णनीय होती है, और वह दसवाँ द्वार होता है जिसे साधना होता है।

कुछ अन्य पदों में भी समानता है, लेकिन फिर यह समानता समाप्त हो जाती है, हालाँकि ग्रंथ-संवाद की विषय-वस्तु एक होने से दोनों में विषय समानता बनी रहती है। समानता वाले पदों को हमने परिशिष्ट में दे दिया है। गोरख बोध में इसी शैली में 127 और पद हैं जिन में विशेषकर यह बताया गया है कि किस आसन में बैठना चाहिये, किस चक्र का भेदन करना चाहिये, इत्यादि। इसके बदले कीनाराम सीधा समाधि की उस अवस्था के वर्णन में पहुँच जाते हैं जो हम देख चुके हैं। विवेकसार के कुल पदों में से गोरख बोध के करीब 12 दोहों में इस प्रकार की समानता दिखाई पड़ती है। यहाँ ध्यान देने वाली बात यह है कि कुछ विद्वानों के इस मत के विपरीत कि बाद की संत परम्पराएँ गोरखनाथ का ही अनुसरण करती हैं, बाबा कीनाराम अपनी इस

रचना में कहीं भी गोरखनाथ का नाम भी नहीं लेते। एक शिष्य के रूप में वे ग्रंथ के आरम्भ में ही अपने वैष्णव गुरु की चरणवंदना कर लेते हैं, और फिर कहते हैं कि यह ग्रंथ दत्तात्रेय और उनके अपने बीच गुरु-शिष्य संवाद के रूप में है। सम्भव है कि बाबा कीनाराम इस बात को रेखांकित करना चाह रहे हों कि अघोर और नाथ परम्पराओं में समानता होने पर भी, जैसा कि यहाँ सरलता से देखा जा सकता है, वे एक नाथ साधु नहीं हैं! यह भी हो सकता है कि वे कहना चाह रहे हों कि उनका दर्शन एक और बहुत पुरानी परम्परा पर आधारित है, उन सिद्धों की परम्परा पर जो शैव और बौद्ध वज्रयान, दोनों परम्पराओं में हुए, या उन वैष्णव योगियों की परम्परा पर भी जो अपनी वंशावली कपिल मुनि से मानते हैं।

समसामयिक विद्वानों में व्हाइट (1996) एवं मैलिन्सन (2013) ने लिखा है कि दत्तात्रेय का वैष्णव अवधूत और शैव सम्प्रदायों से अच्छा सम्बंध है। साठ के दशक में भी, जब पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल ने गोरख-बानी का प्रकाशन करवाया था, उन्होंने लिखा था कि 'सबदी' ही गोरखनाथ की सबसे प्रामाणिक कृति मानी जा सकती है, और उनमें 'अवधू' शब्द, जो अवधूत शब्द का लघु रूप है, बार-बार दुहराया गया है।[52] यहाँ तक कि उस पुस्तक के परिशिष्ट के दो भागों, यथा "मछिंद्र-गोरख बोध" और "ज्ञान-दीप बोध" (गोरख-दत्त गुष्टि, यानी दत्तात्रेय द्वारा गोरखनाथ को प्रदत्त ज्ञान), में इस शब्द का बारम्बार प्रयोग है। ये दो कृतियाँ मुख्य पुस्तक में न डालकर परिशिष्ट में इसलिये डाली गई हैं क्योंकि डा. बड़थ्वाल को गोरखनाथ द्वारा ही लिखी होने की उनकी प्रामाणिकता पर संदेह था। उनका कहना था कि मिथकीय पुरुषों से दत्तात्रेय की वार्ता नाथ सम्प्रदाय के किसी अनुयायी द्वारा ही लिखी हो सकती है, स्वयं गोरखनाथ द्वारा नहीं। उनका तर्क सही है किंतु मछींद्र-गोरख बोध, जिसको अधिकतर केवल गोरख बोध भी कहा जाता है, उनके द्वारा संग्रहित सबसे पुरानी हस्तलिखित पाण्डुलिपियों में 1715 की तारीख के साथ उपलब्ध है। इस कृति में जो विचार प्रतिपादित हैं वे बौद्ध-सिद्धों की वाणियों की याद दिलाते हैं। इन दोनों ही कृतियों में गोरखनाथ के गुरु – मत्स्येंद्र और दत्तात्रेय – उनको बार-बार अवधू कह कर ही सम्बोधित करते हैं जैसे कि वे अवधूत मत के ही अनुयायी हों। इस प्रकार यह शब्द भारत के योगियों और संतों की आध्यात्मिक शब्दावली में प्रचलित शब्द है, चाहे वे बौद्ध सिद्ध हों, नाथ योगी हों, अघोर योगी हों, या संतमत के अनुयायी हों। यह आध्यात्म परम्पराओं में इतना घुला-मिला शब्द है कि अघोर परम्परा में इसका प्रयोग कोई आश्चर्य की बात नहीं है।[53] अघोर और नाथ परम्पराओं के घनिष्ठ सम्बंध के कारण प्राकृतिक रूप से यह उनकी साझा शब्दावली बन गया है। चूँकि विवेकसार में हमें प्रत्यक्ष प्रमाण मिलता है कि गुरु दत्तात्रेय ने ही बाबा कीनाराम को अवधूत मार्ग पर प्रशस्त किया, डा. बड़थ्वाल का विचार कि कोई परवर्ती अनुयायी ही गोरख-बोध की रचना कर सकता था, पूरा सटीक नहीं लगता।

3.4.2 नाथों के पहले की सिद्ध परम्परा

चर्यापदों का अनावरण, जैसा कि प्रबोध चंद्र बागची (1956), महापण्डित राहुल सांकृत्यायन (दोहा कोश 1957), और आचार्य परशुराम चतुर्वेदी (1969) ने अपने प्रकाशनों में किया है, उनमें सन्निहित तांत्रिक तत्त्वों को भली-भांति उजागर करते हैं। गोरख को तंत्र पसंद नहीं। विशेषकर, उनको मांस, मदिरा, या अन्य मादक पदार्थों के प्रति गहरी आपत्ति है। वे कहते हैं –

अवधू मांस भषंत दया धरम का नास ।
मद पीवत तहां प्रांण निरास ॥
भांगि भषंत ग्यांन ध्यांन षोवंत ।
जम दरबारी ते प्राणी रोवंत ॥

52 उदाहरण के लिये, सबदी, 11 दोहा 28-9:

भर्या ते थीरं झलझलंति आधा। सिधें सिध मिल्या रे अवधू, बोल्या अरु लाधा॥ (28)

अर्थात, जो अध्यात्म-ज्ञान से परिपूर्ण हैं वे धीर-गम्भीर रहते हैं, अपने ज्ञान का थोथा प्रदर्शन नहीं करते। लेकिन जो लोग 'अधजल गगरी' की तरह अपूर्ण ज्ञान वाले होते हैं, वे अपना ज्ञान हर जगह प्रदर्शन के लिये छलकाते रहते हैं। जो सिद्ध पुरुष होते हैं वे उनसे बात नहीं करते। विचारों का सार्थक आदान-प्रदान तभी हो सकता है जब एक सिद्ध दूसरे सिद्ध से मिले।

नाथ कहै तुम सुनहु रे अवधू दिढ करि राषहु चीया।
काम क्रोध अहंकार निबारौ तौ सबै दिसंतर कीया॥ (29)।

नाथ (गोरख) कहते हैं, हे अवधू, तुम अपने चित्त को दृढ़ता से नियंत्रण में रखो। एक बार जब तुम काम, क्रोध और अहंकार से निवृत्त हो जाओगे तो जिन दिशाओं में भी भ्रमण करना चाहोगे, ऐसा प्रतीत होगा जैसे तुमने पहले ही वहाँ भ्रमण कर लिया है।

53 आचार्य धर्मेंद्र ब्रह्मचारी शास्त्री ने बौद्धों की सिद्ध परम्परा को अघोर और संतमत के बीच की कड़ी बताया है। इस संदर्भ में उन्होंने आचार्य अवधूतिपा का उल्लेख किया है (1959, 37)। इसी प्रकार आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने भी बौद्धों में अवधूतीमार्ग का उल्लेख किया है (1972, 27), अवधूतीपा को 10वीं शताब्दी में हुए माना है (1969, 25)।

(बड़थ्वाल 1960, 56 संख्या 165)

अर्थात् हे अवधूत, माँस भक्षण से दया और धर्म विनष्ट होते हैं। मदिरा सेवन से प्राण की ऊर्जा क्षीण होती है। भांग का सेवन करने वाले ज्ञान और ध्यान, दोनों से हाथ धो बैठता है। और ऐसा प्राणी फिर यमराज के दरबार में जाकर रोता है।

दूसरी तरफ़ बाबा कीनाराम हैं जिन्हें इन सब बातों की कोई विशेष चिंता नहीं है। गीतावली में हम गाँजा और तम्बाकू से सम्बंधित उनके पद देख चुके हैं जो यह इंगित करते हैं कि ये वस्तुएँ कोई बहुत बड़ी बात नहीं होतीं। बल्कि यह लगता है कि सांध्यभाषा का प्रयोग कर वे उन मादक द्रव्यों के सेवकों को अपनी ओर खींच ले रहे हैं जो, अन्यथा, किसी अज्ञात गड्ढे में गिर चुके होते।

ये रूपक चर्यापदों के समय से चले आ रहे हैं, जहाँ सिद्धों को उन पदार्थों के बारे में बात करने में कोई आपत्ति नहीं थी। उदाहरण के लिये विरुवापाद लिखते हैं –

एक से शुण्डिनी दुइ घरे सान्धअ ।
चीअण वाकलअ वारुणी बान्धअ ॥1॥
सहजे थिर करि वारुणी सान्धे ।
जेँ अजरामर होइ दिढ कान्धे ॥
दशमि दुआरत चिह्न देखइआ ।
आइल गराहक अपणे बहिआ ॥2॥
चउशटी घड़िये देल पसारा ।
पइठेल गराहक नाहि निसारा ॥3॥
एक घडुली सरुइ नाल ।
भणन्ति विरुआ थिरि करि चाल ॥4॥
(चतुर्वेदी 1969, 129 चर्या 3 राग गवड़ा विरुवापादानम्).[54]

एक मधुबाला दो कक्षों में प्रवेश करती है। बहुत ही सावधानी से वह महीन छाल से मदिरा औसाती है। उसकी यह क्रिया इतनी स्थिर है कि एक संकल्प-सिद्ध व्यक्ति अमर हो जाए। दसवें द्वार पर उसका चिह्न देखकर तत्काल ग्राहक आ खड़ा होता है, लेकिन फिर वह वापस नहीं जा पाता। पात्र (घड़ा) छोटा है, टोंटी पतली है। विरूपा कहते हैं स्थिरता से धरो, ध्यान से ढारो।

एक और महत्व का विषय है, और वह है नारी तत्त्व का। गोरखनाथ की रचनाओं में नारी को स्थान नहीं मिला है, और यदि थोड़ा बहुत मिला भी है, तो एक अप्रिय ढंग से। किंतु चर्यापद के बौद्ध सिद्ध शृंगार के रूपक का प्रयोग वही शिक्षा देने के लिये करते हैं जिनकी गोरख अपनी रचनाओं में चर्चा करते हैं। बाबा कीनाराम एक मध्य मार्ग अपनाते हैं। वे शृंगार-लिप्तता के विरुद्ध हैं, लेकिन उनके शिष्य बीजाराम द्वारा लिखी उनकी जीवनी में योगिनी के साथ श्मशान में तांत्रिक क्रिया का साफ वर्णन मिलता है (शुक्ल 1985, 78)।

हालाँकि चर्यापदों की भाषा अपभ्रंश है और गोरखनाथ की हिंदी से भी पहले की है, जिन विषयों की चर्चा उनमें की गई है उनकी प्रतिध्वनि केवल गोरखनाथ की ही रचनाओं में नहीं, अपितु बाबा कीनाराम और संत सम्प्रदाय तक गूँजती है। हाँ, गोरखनाथ की रचनाओं में मादक द्रव्यों का न केवल अभाव है, बल्कि वे निषिद्ध भी हैं। बाबा कीनाराम की रचनाओं में मादक द्रव्यों के रूपक बिल्कुल मिलते हैं, लेकिन ऐसा नहीं है कि वे किसी पर उन द्रव्यों के उपयोग के लिये दबाव डाल रहे हों। वे तो केवल मादकता के आदी हो चुके लोगों को रूपकों के माध्यम से एक ऐसे हितप्रद मार्ग पर प्रशस्त कर देते हैं जहाँ, अगर उन्हें उसका चस्का लग गया तो, वे जान जाते हैं कि वास्तविक 'नशा' क्या होता है।

3.5 पदों की भाषा

सजग पाठकों ने बाबा कीनाराम और गोरखनाथ की रचनाओं में कुछ छोटी-छोटी भिन्नताओं को भाँप लिया होगा। हमने शरीर में निहित तत्त्वों से सम्बंधित इसका जो पहला उदाहरण देखा उसमें बाबा कीनाराम ने 'प्राण' शब्द का प्रयोग किया है जबकि गोरख बोध में उसका समानार्थक शब्द है 'दम'। दूसरे उदाहरण में गोरख को

54 चतुर्वेदी लिखते हैं कि अपने निबंध "हिंदी के प्राचीनतम कवि और उनकी कविताएँ" में राहुल सांकृत्यायन ने यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि केवल गोरखनाथ जैसे नाथ सिद्ध ही नहीं, बल्कि रामानंद, कबीर, दादू, यहाँ तक कि राधास्वामी दयाल भी, "सभी संत इन्हीं चौरासी सिद्धों के टकसाल के सिक्के थे"..(बौद्ध सिद्धों के चर्यापद, 106)।

इतना ही उत्तर मिलता है कि 'मन' का रूप 'शून्य' है, बाबा कीनाराम का उत्तर कुछ अलग है, कि मन चंचल है। गोरख को सीख मिलती है कि 'पवन' का आकार 'निरालम्ब' है, बाबा कीनाराम को बताया जाता है कि 'पवन' 'श्वास' है। 'प्राण' के लिये गोरख पाते हैं कि वह तो 'अलेख' होने के कारण अवर्णनीय है, बाबा कीनाराम को उत्तर मिलता है कि 'प्राण' तो अपने आप में स्वयं 'निवृत्ति' है, अतएव उसमें किसी प्रकार का भाव-अभाव भी प्रकट नहीं होता। जैसा कि हम पहले देख चुके हैं, बाबा कीनाराम ने विवेकसार का रचना-काल संवत 1812 (सन् 1755) बताया है। गोरख-बोध की हिंदी मानक हिंदी के काफी समीप है, लेकिन यह भी हो सकता है कि यह किसी और बहुत पुरानी रचना पर आधारित हो (देखें द्विवेदी 1959, 221)।

शैली के दृष्टिकोण से विवेकसार तुलसीदास के काव्य से मेल खाता है, लेकिन तुलसी में शब्द संरचना से पाठक को मोहित कर लेने की जो प्रतिभा है, विवेकसार उससे भिन्न है। यह गाथा अथवा महाकाव्य न होकर आत्म-साक्षात्कार का उपाय बताने का एक माध्यम है जहाँ काव्य तो है, लेकिन काव्य-कौशल का प्रदर्शन नहीं। हम बाबा कीनाराम के काव्य में लय और संगीतमयता देखते हैं, जब कि गोरख बोध गागर में सागर सरीखे एक-एक पंक्ति में सूक्तिवत धुआँधार ज्ञान-विसर्जन करता है। दोनों ही रचनाएँ दत्तचित्त हो योगविद्या का ही प्रतिपादन करती हैं। लेकिन जहाँ बाबा कीनाराम के पद काव्य सौष्ठव की रचनात्मकता लिये हुए हैं, गोरख बोध की भाषा छंद-शास्त्र की नियमावली की जकड़ से अपनी आंशिक स्वतंत्रता बनाए रखती है। बाबा कीनाराम पूरी रचना में बहुत विनम्रता दर्शाते हैं, प्रश्न पूछते समय गुरु को स्वामी और अंतर्यामी कह कर सम्बोधित करते हैं। गोरख बोध में भी ऐसा दिखता है, लेकिन एक कुतूहल भरे अधीर छात्र के से रूप में जो तुरत जवाब पाने के लिये गुरु का साक्षात्कार कर रहा हो।

हम पाते हैं कि दर्शन और भाषा में इस प्रकार की समानता संतमत की परम्परा में कोई विचित्र बात नहीं है, लेकिन बाबा कीनाराम के लेखन में जो बात रोचक है वह है अघोर/नाथ दर्शन और राम-भक्ति की धाराओं का उस काल में मनोरम संगम, जब भारत में धार्मिक और राजनीतिक परिवर्तन एक चक्रवात की तरह घूम रहा था। जैसा हमने उल्लेख किया, उनकी शब्दावली में हमको कुछेक शब्द तुलसीदास, और कुछ कबीर की रचनाओं में पाये जाने वाले शब्दों और परिकल्पनाओं से मेल खाते अवश्य मिल जाएँगे। लेकिन ऐसा संत-समुदाय में आदान-प्रदान की सुलभता के कारण अपेक्षित है। उनकी भाषा में ब्रज और अवधी का सम्मिश्रण है। बीच-बीच में वे खड़ी बोली का भी प्रयोग करते हैं। उनकी लेखनी में एक सहज मानवीयता है जिसके कारण उनकी रचना सरलता से पढ़ी जा सकती है। लेकिन यह भी स्पष्ट है कि उनकी रचनाएँ मनोरंजन के लिये नहीं लिखी गई हैं, बल्कि एक साधक को आंतरिक अनुभव कराने के लिये। अध्यात्म, ज्ञान, योग और भक्ति के प्रति उनकी आस्था ऐसी है कि कभी हम उनकी भाषा में भक्ति-शास्त्र की शब्दावली देखते हैं, तो कभी वेदांतिक अध्यात्म की। कभी-कभी वे शान्त और शृंगार रस, दोनों के निरूपणके लिये सूफ़ी रूपकों का इस्तेमाल करते हैं –

> नूर महल में पैठि के, नूर महल को देख । रामकिना निज हाल में, पायो अलख अलेख ॥ (रामगीता, रेखता)

> पियाला प्रेम का पीजै, पिया को निरख के जीजै । बरस रस अमृत को धारा, बरस जस मोती को हारा ॥ - (रामगीता, रेखता)

जैसा कि मिश्र ने दर्शाया है (2004, 176-7), बाबा कीनाराम के काव्य में हम तीन प्रकार के प्रतीकों या रूपकों को पाते हैं, यथा – प्राकृतिक प्रतीक, जहाँ प्राकृतिक संकेतों से आध्यात्मिक जगत को व्यक्त किया जाता है। उदाहरण के लिये,

> "हंस बसे सो कहियत गगना । सदा एक रस आनंद मगना ॥" (विवेकसार चौपाई 145)

तथा

> "कमल माँह बस काल दुरंता । तेहि जानत है कोउ कोउ संता ॥" (विवेकसार चौपाई 147)

दूसरे प्रकार के प्रतीक पारिवारिक प्रतीक हैं जहाँ परिवार से सम्बंधित शब्दावली से वे आध्यात्म के रहस्यों को इंगित करते हैं, जैसे

> "पिंड माँह रह देव अनंता । विद्या सहित अविद्या कंता ॥" (विवेकसार चौपाई 88) तथा
> "हृदय बसै मन परम प्रवीना । बाल वृद्ध नहिं सदा नवीना" (विवेकसार चौपाई 139)।

तीसरे प्रकार के प्रतीक इन दोनों से इतर पारिभाषिक या संख्यामूलक शब्द हैं। नाथ सिद्धों की पारिभाषिक शब्दावली जैसा एक उदाहरण,

"अनहद अबिनाशी महँ संतत रहे अभेद ।
अबिनाशी तब आपु महँ समुझि समानो वेद" (विवेकसार दोहा 198)।

संख्यामूलक प्रतीकों का एक उदाहरण है, "पाँच तत्त्व गुण तीनि लै कर्यौ जगत को तंत" (विवेकसार दोहा 57)। उनकी रचनाओं में हम विस्तारित रूपक बहुत कम पाते हैं। प्राय: जब पाते भी हैं तो हुक्का, सुरती, गाँजा आदि शब्दों से, जैसा कि हम ऊपर देख आए हैं, काया परिचय, ध्यान अथवा योग की प्रक्रियाओं के लिये उनका प्रयोग दृष्टिगोचर होता है।

लोकोक्तियों और मुहावरों का प्रयोग भी बाबा कीनाराम के पदों में पर्याप्त हुआ है। शायद इसलिये क्योंकि उनका जीवन आम जनता के बहुत निकट का था। कुछ उदाहरण देते हैं –

"अंधहि अंधा डगर बतावै, बहिरहि बहिरा बानी" (गीतावली 1987, 6);

"कीनाराम फकीरी सहज नहीं पग धरते निकले दूध छठी का" (गीतावली 1987, 4);

"पढ़ै पुरान कोरान वेदमत जीव दया नहीं जानी । औरन को कहि कहि समुझावत आप मरम नहिं जानी" (गीतावली 1987, 6);

"मृगतृष्णा के नीर ज्यों अरु भूतनि को नाँच" (उनमुनीराम, 7);

धन धाम सगाई लागि गँवाई जन्म बिताई नर धंधे ।
ममिता रंग राते मदके माते कौन दांव तेरा बंधे ॥
यहि विधि दिन खोया बहु विधि गेया आपु बिगोया तूं अंधे ।
किनाराम सम्हारै समय विचारै सतगुरु लायो मन रंधे ॥
(गीतावली 1987, 8)।

यहाँ हमने बहुत ही संक्षेप में बाबा कीनाराम के काव्य सृजन की मात्र एक झलक प्रस्तुत की है। उनके काव्य की विस्तृत समीक्षा पाने के लिये देखें सुशीला मिश्र 2004, अघोरपंथ और संत कीनाराम।

विवेकसार में बाबा कीनाराम की पद-रचना प्रतिभा सबल भी है और प्रबल भी है। उनके अधिकतर पदों में मात्रा गणना छंद-शास्त्र के अनुसार पूर्णतया उपयुक्त है। इस कारण से यदा-कदा जब एकाध कोई ऐसा पद सामने आता है जिसमें यह गति मात्रा की न्यूनता या अधिकता से भंग हो जाती है, तो वह सहज ही परिलक्षित हो जाती है। उदाहरण के लिये दोहा संख्या 67 में 'त्रिधा शरीर भेद लै', यह चरण 13 मात्राओं के स्थान पर 12 मात्राओं का ही है। कुछेक अन्य स्थानों पर भी ऐसा दिखता है, लेकिन इस प्रकार की मात्राओं की न्यूनता तुलसीदास के कई पदों में भी देखी जा सकती है। दोहा संख्या 100 में 'निरंजन ताहि प्रसंग' चरण में एक मात्रा अधिक है। निरंजन शब्द यहाँ चार मात्राओं का होने पर बिल्कुल ठीक बैठता। लेकिन यहाँ पाँच मात्राओं का हो जा रहा है। सम्भव है कि बाबा कीनाराम इसे 'निरँजन' के रूप में ले रहे हों, क्योंकि अनुनासिक से मात्रा नहीं बढ़ती। दोहा संख्या 223 में 'अनुभव होते हि शिष्य तब' चरण में एक मात्रा 'हि' के कारण अधिक है। सम्भव है इसे किसी ने बाद में जोड़ दिया हो। दोहा संख्या 266 में 'मन गहि इक अंश' चरण में दो मात्राएँ कम हैं। सम्भव है इसे 'मन में गहि इक अंश' होना चाहिये था, जिससे मात्रा संख्या ठीक हो जाती। दोहा संख्या 273 में 'रामकिना तत्त्व ज्ञान' में तत्त्व शब्द में एक मात्रा अधिक होने से गतिभंग आ जा रहा है।

मात्रा गणना के लय को बनाए रखने के लिये बाबा कीनाराम कुछ स्थानों पर शब्द की वर्तनी बदल देते हैं, जैसा कि संत साहित्य में प्राय: सभी संत करते हैं। उदाहरण के लिये दोहा संख्याएँ 3, 28, 29 और 64 में 'कोई' वर्तनी के स्थान पर वे 'कोइ' प्रयोग करते हैं। मात्र तीन पदों में वे तुकांतता बनाए रखने के लिये एक ही शब्द का दो बार प्रयोग करते हैं, जैसे कि दोहा संख्या तीन में 'कोइ' का दो बार, संख्या 155 में 'हेतु' का दो बार, और संख्या 236 में 'पावों' शब्द का दो बार। लेकिन इसके विपरीत पद संख्या 199 में जब वे 'नहीं दूर नहिं निकट अति नहीं कहूँ अस्थान' रचते हैं, तो 'नहीं कहूँ स्थान' लय और गति दोनों की दृष्टि से बहुत प्रभावोत्पादक बन जाता है।

अपने काव्य में बाबा कीनाराम काया परिचय के आंतरिक परिप्रेक्ष्य में न बहुत अधिक विस्तार, न किसी प्रकार की तकनीकी शब्दावली में जाते हैं, जैसा कि गोरखनाथ की रचनाओं में दिखता है, न वे अन्य परम्पराओं की भर्त्सना ही करते हैं। वे दुरुह उलटबासियों का प्रयोग भी न के बराबर करते हैं। उनकी उपलब्ध सभी पाँच रचनाओं और करीब 900 पदों में हमें शायद ऐसे तीन ही उदाहरण मिलेंगे। वे काव्य-शास्त्र के नियमों और शब्द-सज्जा का भी मात्रज्ञता से प्रयोग करते हैं, उसको बहुत बढ़ा-चढ़ाकर नहीं दिखाते हैं, इसलिये उनका काव्य सौम्य नदी की धारा की तरह सहजता से बहता चला जाता है। वे ईश्वर और गुरु को छोड़ अन्य किसी

का भी गुणगान नहीं करते, न उनका उद्देश्य काव्य सृजन से किसी को चमत्कृत करना है। उनका जीवन, उनकी रचनाएँ और उनकी परम्परा शोध और लेखन के एक विस्तृत क्षेत्र का उद्घाटन करती हैं, न केवल कीनाराम की अपनी लिखी रचनाओं के लिये, बल्कि पूर्ण सरभंग सम्प्रदाय के लिये भी, जिनकी रचनाएँ बिहार, उत्तर प्रदेश और बंगाल के बहुत से मठ-मंदिरों में अज्ञात-अनदेखी पड़ी हुई हैं।

4 विवेकसार की महत्ता

यह तो हमने जान ही लिया कि संत साहित्य की रचना शून्य में नहीं हुई। संतों के पहले की परम्पराओं ने उनके ऊपर अपनी छाप छोड़ी, और उस थाती का उपयोग संतों ने अपने उद्देश्यों के लिये किया। बाबा कीनाराम द्वारा रचित साहित्य में भी यह परिलक्षित है। लेकिन एक ध्यान देने का विषय है कि जब हम ऊपर चर्चित नाथ साहित्य से – जिनमें सभी में योग विषयक प्रक्रियाओं – शरीरस्थ चक्र, आसन, प्राणायाम इत्यादि – का विस्तृत वर्णन है – विवेकसार का तुलनात्मक अवलोकन करते हैं, तो यह ग्रंथ अपना चरित्र बहुत ही भिन्न प्रकृति का दर्शाता है। चूँकि बाबा कीनाराम कहते हैं कि वे इस ग्रंथ में अष्ट अंग बता रहे हैं, पाठक गण योग के ही अष्ट अंगों की विवेचना की अपेक्षा करते हैं। किंतु विवेकसार में योग की व्याख्या का, उसके आसनों, बंधों, धारणाओं इत्यादि का विस्तार से निरुपण बिल्कुल भी नहीं है। इससे हम यह निष्कर्ष तो अवश्य निकाल सकते हैं कि यह ग्रंथ हठयोग का नहीं है। न इस ग्रंथ में योग के अष्ट अंगों से किसी प्रकार का स्पष्ट तालमेल है, हालाँकि हम बौद्धिक आग्रह से ऐसा तालमेल बैठा सकते हैं, जैसे कि हम कह सकते हैं विवेकसार का पहला अंग – गुरुपद स्तवन – अष्टांग योग के 'यम' अंग से मेल खाता है क्योंकि अपने गुरु के प्रति आदर और सम्मान व्यक्त करते हुए बाबा कीनाराम एक बहुत ही आत्मनियंत्रित शिष्य या भक्त के रुप में दृष्टिगोचर होते हैं, और गुरु के प्रति निष्ठा अध्यात्म परम्पराओं में सर्वोच्च भाव को दर्शाती है। हम कह सकते हैं कि ज्ञान अंग नामक दूसरे अंग का प्रथम भाग योग के 'नियम' अंग से तुलनीय है क्योंकि यहाँ गुरु शिष्य को अनात्म वस्तुओं के परिहार का निर्देश देते हैं। ये अनात्म वस्तुएँ काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह इत्यादि गिने जाते हैं। योग का तीसरा अंग 'आसन' माना जाता है। किसी साधक को आसन-विशेष में बैठने का कोई निर्देश विवेकसार में नहीं है, परंतु ज्ञान अंग के ही उत्तरार्ध में सृष्टि में विद्यमान अवयवों का शरीर में होना बताया गया है, और इस वर्णन को हम इन अवयवों का शरीर में आसन मान सकते हैं। इसी प्रकार योग के चौथे माने जाने वाले अंग, प्राणायाम का, यहाँ कोई उल्लेख नहीं है, जब तक कि हम सोऽहं मंत्र के निर्देश को ही श्वास संचालन की बाह्य और आंतरिक क्रिया का उद्बोधन न मान लें। योग के 'पाँचवें' कहे जाने वाले अंग 'प्रत्याहार' की एक झलक हम विवेकसार के तृतीय अंग, विज्ञान अंग में मान सकते हैं जहाँ शरीर में स्थित सूक्ष्म अवयवों, जैसे मन, वायु, प्राण, हंस इत्यादि का वर्णन है, और जिनके माध्यम से हम स्थूल शरीर के प्रति अनासक्ति के भाव का अनावरण समझ सकते हैं। हम कह सकते हैं कि विज्ञान अंग का ही अगला भाग योग के छठे कहे जाने वाले 'धारणा' अंग से तुलनीय है क्योंकि यहाँ इन सूक्ष्म अवयवों के विशिष्ट स्थान को शरीर में इंगित किया गया है। योग के सातवें अंग 'ध्यान' के लिये इसी अंग के दो पद हो सकते हैं जहाँ शिष्य द्वादश पल का अनुमान कर एक ऐसा अनुभव पा जाता है जहाँ विश्व-प्रपंच स्वयंमेव विगलित हो जाता है। लेकिन अगला ही अंग, निरालम्ब, ध्यान की इस परिकल्पना को और दूर तक ले जाता है क्योंकि यहाँ इन सूक्ष्म अवयवों की उस अवस्था का वर्णन है जैसे कि वे शरीर के उत्पन्न होने के पहले थे। यह विवेकसार का छठा, अजपा अंग है, जहाँ ध्यान पर पूरा बल दिया जाता है। इस ग्रंथ का पाँचवाँ अंग, समाधि अंग, निस्संदेह योग के आठवें अंग, समाधि अंग से पूरी तरह तुलनीय है, क्योंकि यहाँ एक ऐसी अवस्था का वर्णन है जहाँ शरीर के विभिन्न क्रिया-कलाप विराम पा जाते हैं और केवल उस अव्यक्त सत्ता का अनुभव होता है जिसके माध्यम से सृष्टि उत्पन्न हुई है। इस अनुभव का प्रसारण सातवें अंग, शून्य अंग में होता है, जहाँ शिष्य सृष्टि के हर अणु-परमाणु तक में अपनी ही उपस्थिति पाता है। ग्रंथ का आठवाँ, रक्षा अंग, ऐसे चैतन्य मनुष्यों के जीने की शैली पर प्रकाश डालता है, और नौवाँ अंग, फल-स्तुति, ग्रंथ के पारण की महत्ता प्रकाशित करता है। हम पाते हैं कि छठा, अजपा अंग, और पाँचवाँ, समाधि अंग, ही ऐसे हैं जिन्हें हम शास्त्रों में उल्लिखित योग के अष्ट अंगों की संज्ञाओं से निःशंक होकर मिलता हुआ मान सकते हैं। बाकी के अंगों का निरुपण पाठक के दृष्टिकोण पर निर्भर करता है। विवेकसार किसी पद्धति के निरुपण का भी ग्रंथ नहीं है जिसमें विशिष्ट प्रकार की क्रियाओं का उल्लेख किया गया हो। न इसमें साधु-संत-संन्यासियों के आचरण-व्यवहार की नियमावली का ही वृहद वृत्तांत है, हालाँकि ग्रंथ के अंत में अवश्य गुरु की ओर से इस बात का सशक्त सुझाव है कि ज्ञान-प्राप्त अवधूत का जीवन किस प्रकार का होना चाहिये।

इस ग्रंथ में प्रस्तुत शब्दों में जो झलकता है वह है बाबा कीनाराम का अपने गुरु के प्रति आदर और समर्पण का भाव, गुरु दत्तात्रेय से उनको ज्ञान की प्राप्ति होना, सृष्टि संरचना की प्रक्रिया का वर्णन, जो ब्रह्माण्डे सो पिण्डे का निरुपण, सूक्ष्म शरीर के अवयवों का उल्लेख जैसे आत्मा, प्राण, वायु, काल, जीव, शिव, हंस, शून्य आदि, इन सभी अवयवों का शरीर में विशिष्ट स्थान, सृष्टि विलय के काल में इन अवयवों के साथ क्या

होता है उसका विवेचन, सोऽहं मंत्र, ज्ञान प्राप्ति के पश्चात् भी साधक के लिये अभ्यास को करते रहना, और एक अवधूत की अभेद वाली जीवन शैली। यहाँ जो सूक्ष्म शरीर के अवयव हमने बताए उनका वर्णन सृष्टि प्रक्रिया में भी है, और सृष्टि विलय काल में भी। किंतु ये शब्द सिद्धसिद्धांतपद्धति में बहुत ही विस्तार से व्याख्यायित विषयों से साम्य नहीं रखते, केवल अवधूत की जीवनशैली वाले अध्याय की विषयवस्तु, एवं पिण्ड में ब्रह्माण्ड का उल्लेख ही साम्य प्रदर्शित करते हैं।

अब हम देख सकते हैं कि विवेकसार की नाथ साहित्य से समानता होने पर भी यहाँ पर्याप्त असमानताएँ हैं, जिससे एक महत्वपूर्ण निष्कर्ष तक पहुँचा जा सकता है। ऐसा इसलिये क्योंकि विवेकसार में बाबा कीनाराम ने योग के सिद्धांत का गागर में सागर सरीखे निरूपण किया है, योग के शारीरिक अभ्यास का नहीं, जिसका प्रतिपादन एक समर्थ गुरु के निर्देशन में ही होना चाहिये। ऐसा भी प्रतीत होता है इस छोटे से ग्रंथ में बाबा कीनाराम अपनी अघोर और संत अस्मिता को रेखांकित कर रहे हैं, और अपने अनुयायियों के लिये एक परम्परा और समुदाय का निर्माण कर रहे हैं। ऐसा कहने का कारण है। चूँकि बाबा कीनाराम विवेकसार को अष्टांग योग की रचना कह रहे हैं, हम यह मान सकते हैं कि उनको अपने समय के, या उससे पूर्ववर्ती काल की भी, योग परम्पराओं का पर्याप्त ज्ञान रहा होगा।

योग साहित्य में यदि किसी का व्यक्तित्व अन्य सभी से अधिक जाना-माना है, तो वह है मत्स्येंद्रनाथ के शिष्य गोरखनाथ का। व्हाइट ने प्रचुर उदाहरणों से दर्शाया है कि योग की बहुत सी रचनाओं का प्रणेता उन्हीं को माना जाता है, और कहा जाता है कि उन्होंने भारत में उस काल में वर्तमान योग परम्पराओं को पुनर्व्यवस्थित किया था, जो आगे चल कर 'नाथ' कहलाए। लेकिन इनमें से कुछ परम्पराएँ भगवान् शिव के नाम पर अपने को गोरखनाथ के अवतीर्ण होने के बहुत पहले से ही नाथ कहती चली आई थीं। जो पुनर्व्यवस्था गोरखनाथ ने इन परम्पराओं को दी उनमें एक तरफ पाशुपत, कापालिक, और शाक्त थे, और दूसरी तरफ सिद्ध (महेश्वर और रस) एवं बौद्ध सिद्धाचार्य भी। कदाचित् उसी काल में, या उससे पहले, अध्यात्म और योग परम्पराओं के क्षेत्र में एक अन्य महती प्रणेता को भी पाया जा सकता है, जिनका नाम दत्तात्रेय है। योग की परम्परा में उनकी महत्ता को इसी बात से समझा जा सकता है कि कई ग्रंथों में उनको गोरखनाथ के साथ संवाद करते हुए चित्रित किया जाता है। अध्यात्म परम्पराओं में लोकप्रिय अवधूत-गीता इस तथ्य का ज्वलंत प्रमाण है। दत्तात्रेय को ही एक वैष्णव अवधूत सम्प्रदाय का भी प्रणेता कहा जाता है (व्हाइट 1996, 99)।

यह अंतिम जानकारी बाबा कीनाराम के संदर्भ में महत्त्वपूर्ण है। हम संदेह-रहित होकर कह सकते हैं कि बाबा कीनाराम को पिण्ड-ब्रह्माण्ड समन्वय का न केवल अच्छा ज्ञान था, अपितु अनुभव भी था। वे यह भी अवश्य जानते होंगे कि इस सिद्धांत का आरम्भ सिद्धसिद्धांतपद्धति से ही नहीं हुआ, हालाँकि यह निर्धारित कर पाना कि यह ठीक कब से अध्यात्म अवचेतना में उजागर हुआ, कह पाना अत्यंत कठिन है। इसलिये इस सिद्धांत को अपनाकर और इस का प्रतिपादन कर वे अपनी रचना और परम्परा को एक ऐतिहासिक गाम्भीर्य प्रदान कर रहे हैं। हम यह तो नहीं कह सकते कि अपने जीवन-काल में वे कभी वैष्णव अवधूत सम्प्रदाय में रहे या नहीं रहे, किंतु चूँकि वे दत्तात्रेय को ही आध्यात्मिक उत्कर्ष के शिखर तक पहुँचा देने वाले अपने गुरु के रूप में उद्घोषित करते हैं, उनकी शिक्षा और सिद्धांत के प्रति उनकी आस्था से हम यह अनुमान लगा सकते हैं कि वे वैष्णव-अवधूत सम्प्रदाय और कदाचित् उनके भी सिद्धांतों में अद्वैत सांख्य के पिण्ड-ब्रह्माण्ड समन्वय से परिचित रहे होंगे। यदि ऐसा है तो हम कह सकते हैं कि गुप्ता के रुझान से अलग, कीनाराम बाबा की अघोर परम्परा को 'नाथ' परम्परा से पृथक परिदृश्य में भी समझा जा सकता है। चूँकि बाबा कीनाराम ने अपने वैष्णव गुरु के सम्मान में चर वैष्णव मठों की स्थापना की, बहुत से लोग उनको पहले से ही गोसाईं बाबा कीनाराम कहते आए हैं। यदि वैष्णव-अवधूत सम्प्रदाय से उनका कुछ सम्बंध रहा हो तो हम अनुमान लगा सकते हैं क्यों, सन् 1650 में एक अज्ञात चित्रकार द्वारा 'औघड़' नाम से अंकित छवि को 1750 में मीर कलां खां ने वैष्णव रूप में प्रदर्शित किया, यदि ये चित्र वास्तव में बाबा कीनाराम को प्रदर्शित करते हैं, जैसी कि हम ऊपर चर्चा कर आए हैं। उनकी अघोर-तंत्र और योग के समन्वय वाली छवि तो जनस्मृति में व्याप्त है ही, बनारस से लेकर महाराष्ट्र तक दत्तात्रेय द्वारा उनकी दीक्षा की कथाएँ प्रचलित हैं। ये सभी बातें मिल-जुल कर उनको 'नाथ' परिसीमन में न बाँधकर कहीं बड़े चित्रपट पर दिखाती हैं। कुछ इन्हीं कारणों से विवेकसार में बाबा कीनाराम ने बहुत सूझ-बूझ के साथ नाथ साहित्य में प्रचलित चक्रों की संख्या (6 या 9), या षड़ांग-अष्टांग योग (देखें श्रीवास्तव 1981, आशीर्वचन 6-7) इत्यादि के विवाद से अपनी कृति को अछूता रखा है। यहाँ तक कि 'जोगी' शब्द भी विवेकसार में केवल दो ही स्थानों पर प्रयुक्त हुआ है। उनका ध्यान केवल गुरु के प्रति समर्पण, काया का अंतरंग परिचय, और अवधूत की जीवन-शैली पर केंद्रित है, जिसे उन्होंने नाथ साहित्य द्वारा जनमानस में प्रचलित की हुई शब्दावली में, किंतु काव्य-शास्त्र के गाम्भीर्य और ओज में रचकर प्रस्तुत किया है। इन सब कारणों से यह छोटा सा ग्रंथ अपनी विशिष्टता लिये, अपना स्वतंत्र स्थान बना लेता है। कबीर, दादू जैसे अन्य संतों की वाणी और पदों में भी गोरखनाथ की भाषा की प्रतिच्छाया के कारण उनकी अपनी कृति की व्यापकता बहुत बढ़ जाती है। फिर, गोरख बोध जैसी रचना से मिलती-जुलती, लेकिन फिर भी कुछ भिन्न, रचना कर के वह दर्शा देते हैं कि प्राचीन होते हुए भी ये परम्पराएँ समानांतर हैं, एक नहीं। दत्तात्रेय को अपने गुरु के रूप में स्वीकार कर वे इसी बात की पुष्टि करते हैं। और तब वे अपनी अस्मिता का

प्रदर्शन प्राचीन परम्परा से भिन्न रूप में दर्शाते हैं – गोरख बोध जैसे ग्रंथ में उल्लिखित हठयोग की क्रियाओं और रूपकों, चक्र-निदर्शनों, कुण्डलिनी, उलटबाँसियों इत्यादि को अपनी रचना में बिल्कुल भी स्थान न देकर। एक प्रकार से वे कह रहे हैं, पिण्ड-ब्रह्माण्ड का सिद्धांत, और उस पर आधारित सत्य तो शाश्वत है, लेकिन उस सत्य तक पहुँचने का मार्ग मात्र हठयोग नहीं है। उस तक अजपा जप के माध्यम से मन पर नियंत्रण रख भक्ति के मार्ग से भी पहुँचा जा सकता है। ऐसा उदाहरण राधावल्लभी सम्प्रदाय के कवि ध्रुवदास की रचनाओं में स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है जब वे भागवत में वर्णित बहुत सी कृष्ण लीला का अपने लेखन में सम्मिलन न कर केवल राधा और कृष्ण के निकुंज विहार को ही भक्ति रस का पूर्ण माध्यम मानकर प्रस्तुत करते हैं। यहाँ वे अपने सम्प्रदाय की रूपरेखा प्राचीन सम्प्रदाय की विस्तृत सामग्री को जोड़कर नहीं, छोड़कर, सर्जन करते हैं (स्नेल 1992, 247-58)।[55] यह तो हुई बाबा कीनाराम की परम्परा के सिद्धांत निर्धारण की बात। लेकिन विवेकसार में ही लिखित उनका एक दोहा दर्शाता है कि वे इस ग्रंथ के माध्यम से एक समुदाय या सम्प्रदाय की भी रचना कर रहे हैं। दोहा संख्या 264 में वे कहते हैं –

> बानी बहुत प्रकाश हित सिता राम समुदाय ।
> यह रविसार विवेक लहि संशय निशा नसाय ॥

तात्पर्य यह कि सीता और राम के भक्ति समुदाय में व्यक्ति के लिये ज्ञान-ज्योति का अनुसंधान करने के लिये पर्याप्त वाणियाँ हैं। लेकिन वैसा होते हुए भी, उसके साथ ही, यदि वे विवेकसार में दर्शाए विवेक की सम्पुटित अभिव्यक्ति का आचरण करने लगें, तो उनके संशयों का तिमिर आमूल-चूल नष्ट हो जाए। हम पहले पढ़ चुके हैं कि ऐतिहासिक रूप से हमें अघोर क्रियाएँ तो मिलती हैं, अघोर साधक भी मिलते हैं, लेकिन कोई अघोर सम्प्रदाय नहीं मिलता। बाबा कीनाराम की साहित्य समीक्षा में हमने जो अंतिम कविता पढ़ी, उसमें कपाल पात्र से मद्यपान का रूपक अवश्य इतिहास की धुंध में उपस्थित कापालिकों का स्मरण कराता है, लेकिन एक समुदाय विशेष का नहीं। विवेकसार के माध्यम से प्रतीत होता है वे इसी प्रकार के समुदाय या सम्प्रदाय का श्रीगणेश कर रहे हैं। यहाँ हमारे सम्मुख एक रोचक प्रतिमान प्रकट होता है। संत ज्ञानेश्वर ने, जो एक नाथ योगी थे क्योंकि उनके अग्रज निवृत्तिनाथ ने ही उन्हें दीक्षा दी थी, और उनके दादा भी गोरखनाथ से दीक्षित कहे जाते हैं, अपनी सबसे लोकप्रिय रचना ज्ञानेश्वरी में संस्कृत में लिखी वैष्णव परम्परा की गीता की मराठी में व्याख्या की ताकि वह आम जन को उनकी अपनी भाषा में समझ आ जाए। बाबा कीनाराम ने, जिनके पहले गुरु वैष्णव थे, और जिनके साथ माना जाता है कि उनका पर्याप्त दीर्घ अवधि तक संसर्ग रहा, संस्कृत में रचित सिद्धसिद्धांतपद्धति और शिवसंहिता जैसी रचनाओं की अपने समय-काल की हिंदी में व्याख्या की ताकि वह आम जन को ग्राह्य हो जाए।

सम्प्रदाय स्थापना के दृष्टिकोण से विवेकसार मात्र एक मूल्यवान ग्रंथ ही नहीं, अमूल्य ग्रंथ बन जाता है। अपने शिष्यों को इस समुदाय में सेवा-भाव में तत्पर करने के लिये सदा पर-पीड़ा को पाकर उसका निदान करने के लिये भी उत्साहित करते हैं। एक अवधूत संत के लिये, जिसे न पीड़ा सालती है न सुख कम्पित करता है, ऐसा कर पाना सहज है। संभव है इसी कारण से विद्वत्जन बाबा कीनाराम को अघोर सम्प्रदाय का भगवान् दत्तात्रेय के बाद सबसे बड़ा प्रचारक मानते हैं।

55 बाबा कीनाराम के विवेकसार से सीधे तौर पर सम्बंधित न होते हुए भी, किसी पुराने ग्रंथ का उपयोग एक नई बात कहने के लिये करने का एक बहुत अच्छा उदाहरण प्रो. फ़िलिप मास ने बौद्ध परम्परा के अभिधर्मकोष भाष्य और पतंजलि योगशास्त्र के माध्यम से दिया है (मास 2017, https://tinyurl.com/jgdkxyz)। उन्होंने दर्शाया है कि किस प्रकार महर्षि पतंजलि ने चौथी शताब्दी में रचित वसुबंधु के अभिधर्मकोषभाष्य में बौद्ध आचार्य धर्मत्रात द्वारा निष्पादित अनित्यता के सिद्धांत के कुछ वाक्यांशों और शब्दों को लेकर, उन में हल्का सा परिवर्तन कर, सांख्य दर्शन में योग-परम्परा के सार्वभौमिक सिद्धांत का प्रतिपादन किया।